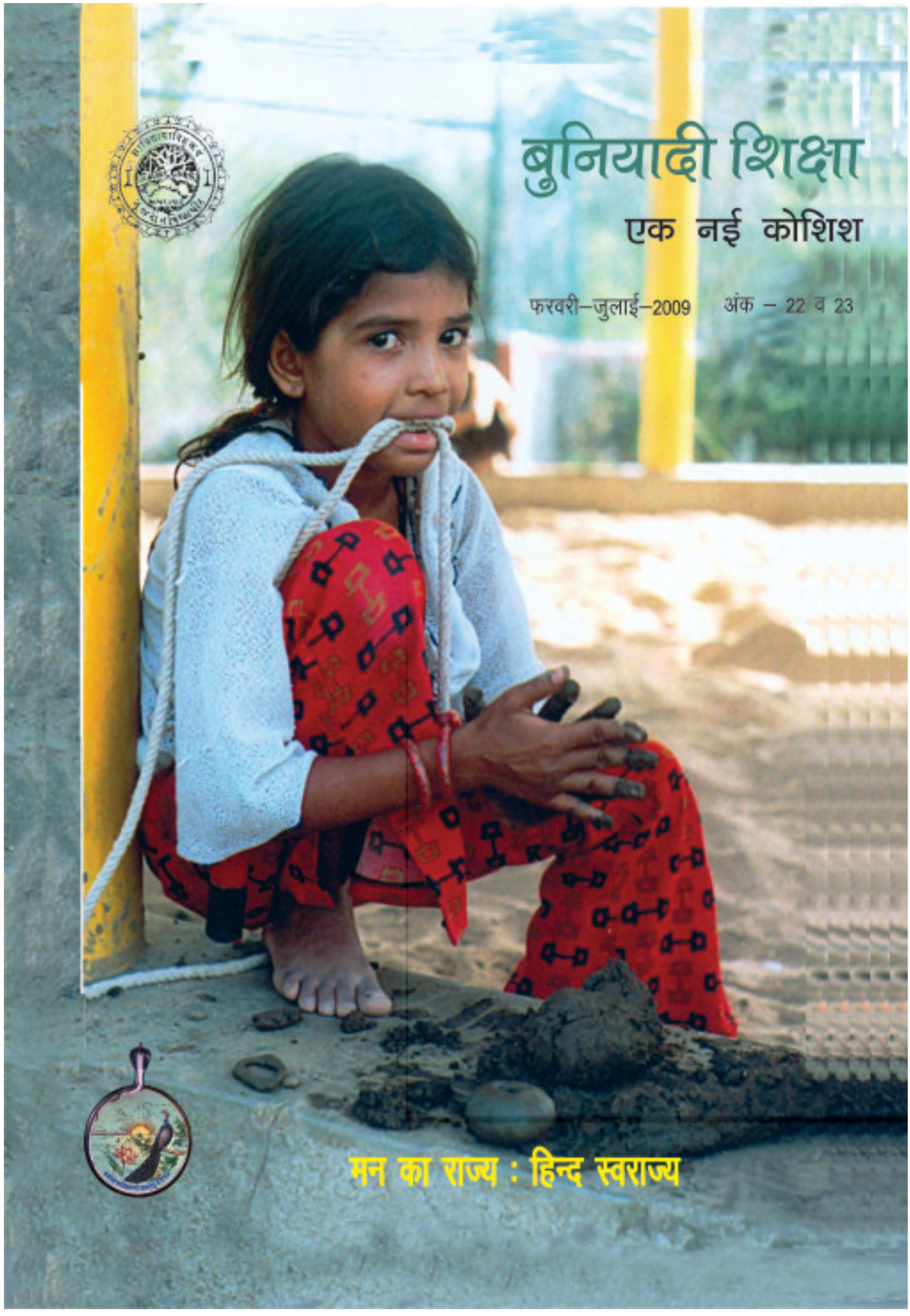
बुनियादी शिक्षा
एक नई कोशिश
फरवरी–जुलाई–2009 अंक – 22 व 23
मन का राज्य : हिन्द स्वराज्य

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

अंक–22 व 23

परामर्श
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

संपादक
के. आर. शर्मा

सलाहकार
एम.पी. शर्मा
भागचंद्र कुमावत
गोविन्द रावल
भरत जोशी
सुधा भण्डारी

संपादन सहयोग
कुमार अनुपम

चित्रांकन
प्रशांत सोनी

कंप्यूटर सेटिंग
इसरार अहमद

टाईपिंग सहयोग
भवानी शंकर

संपादकीय पता
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497

मुद्रक : संजय प्रिन्टर्स, उदयपुर

इस अंक में

चिट्ठी–पत्री	1
प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम हृदय कांत दीवान	3
गांवों का विकास और गांधी नारायण भाई देसाई	12
हिन्द स्वराज्य के सौ बरस महेश नारायण दीक्षित, विक्रमसिंह अमरावत	17
मन का राज्य–हिन्द स्वराज्य वेदव्यास	23
'हिन्द स्वराज्य' क्यों? रेणु व्यास	26
सभ्यता क्या है?	30
तालीम क्या है?	32
भारत निर्माण की मार्गदर्शिका मनसुख सल्ला	33
राष्ट्रीय सेमीनार 26–28 सितम्बर 2009	40
फिर से हिन्द स्वराज्य कनक तिवारी	43
बुनियादी छात्रों के साथ अनुभव विक्रमसिंह अमरावत	47
खुली हवा में सीखने–सिखाने की पहल	49
शैक्षिक शिविर में स्वावलंबन का पाठ कल्पना जैन	52
विद्या भवन में वनशाला यात्रा के पड़ाव वि.वि. सिंह	54
गलतियों का अध्ययन सुधा भण्डारी	58
शिक्षक की डायरी एकता शर्मा	63
खेल और शिक्षा का जुगलबंदी ईश्वर सिंह शेखावत	67
बातचीत से हल होते हैं मसले पुष्पा शर्मा	69
बालकों की संवेदनशीलता ए.के. पालीवाल	71
नापसंद के. आर. शर्मा	76
एजुकेशन कम्यूनिटी	78

आवरण एवं पिछले आवरण के चित्र : के.आर. शर्मा

इस अंक की सहयोग राशि : 60 रुपए, वार्षिक चंदा– 120/– रुपए। चैक/ड्राफ्ट – विद्या भवन सोसायटी के नाम से बनवाएं।

सौजन्य : सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुंबई एवं राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (NCRI) हैदराबाद

चिट्ठी–पत्री

बुनियादी शिक्षा का अंक–21 मिला। आभारी हूं। आवरण चित्र बढ़िया है। विवरण में लेडी बीटल के बदले अपनी भाषा में प्रयोजित सुंदर नाम का उपयोग और अच्छा लगता। इस सुंदर कीड़े को हिन्दी प्रदेशों में एक बड़े भाग में 'बीर बहूटी' कहते हैं। गुजराती में इसका नाम और भी सुन्दर है– गोकुल गाय। गांधीजी की जिस पुस्तक का आज सौवां जश्न मनाया जा रहा है उस हिन्द स्वराज्य में भी गांधीजी ने गोकुल गाय का उपयोग किया है।

अनुपम मिश्र
गांधी शांति प्रतिष्ठान,
221–223, दीन दयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली–110002

बुनियादी शिक्षा का अंक–21 हस्तगत हुआ। पत्रिका के बदले हुए रूप को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और इसीलिए प्राप्त होते ही आद्योपान्त पढ़ने का लोभ संवरण नहीं कर पाया।

ज्योतिभाई देसाई का आलेख ''चलो जामुन खाने'' बहुत अच्छा लगा। बुनियादी शिक्षा का मर्म इस आलेख में सन्निहित है। सुधीर श्रीवास्तव का ''कैसे पढ़ाएं गणित'' आलेख भी प्रभावित कर गया। बाज़ारवादी मस्ती, उदास लड़कों का राज, ज्ञान का सृजन, शिक्षा कैसी हो आदि आलेखों को पढ़कर सुकून मिला कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली के दुष्परिणामों पर विचार करने के लिए लोग मौजूद हैं। वे चिन्ता करते हैं, चिन्तन भी करते हैं और ऐसी साफ़–सुथरी पत्रिकाओं को अपने विचार प्रकाशनार्थ भेजते रहते हैं।

संपादक महोदय को सुझाव देना चाहूंगा कि ऐसी स्तरीय पत्रिका में 'संपादकीय आलेख' के बिना कुछ छूट गया सा लगता है। संपादकीय आलेख पत्रिका को पूर्णता प्रदान करेगा ऐसा मेरा मत है।

इस अंक की उत्कृष्टता के लिए पत्रिका की पूरी टीम को हार्दिक बधाई।

इस पत्रिका की प्रसार संख्या बढ़े, हर शिक्षक इसका पाठक बने, परिणाम विचारों में परिवर्तन के रूप में सामने आएं– ऐसी मंगलकामनाएं।

सुशील कुमार जैन
उपप्रधानाचार्य
ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान
गढ़ी–ज़िला बांसवाड़ा (राज.)

शिक्षा को लेकर आप लोग जो कर रहे हैं वह हमें गांधी की याद दिलाता है। उदारीकरण एवं व्यवसायीकरण की इस अंधी दौड़ में समाज में शिक्षा को जिस बात की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है वह ''खोजबीन'' व ''बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश'' जैसी पत्रिकाएं इस फास्ट फूड के ज़माने में घर की मीठी थूली या मिट्टी के बर्तन में बनी दाल–रोटी सी सौंधी ठंडक दिलो–दिमाग़ को पहुंचाती है।

मैं ऐसा मानता हूं कि ईमानदार कोशिश यदि हर शिक्षक कर ले तो इस देश में बच्चों का बहुत भला हो सकता है।

आप सदैव नई कोशिश करते रहें और आपकी खोज को नई दूरबीन मिले, सदैव यही कामना करता हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि वह सुबह ज़रूर आएगी, ज़रूर आएगी। आपकी निरन्तरता के लिए साधुवाद।

राजेन्द्र मोतियाणी
संचालक
सेंधवा पब्लिक स्कूल, सेंधवा,
ज़िला– बड़वानी, म.प्र.

बुनियादी शिक्षा का अंक 21 मिला। आवरण बहुत आकर्षक है। मेरी राय में 'चलो जामुन खाएं' और 'कैसे पढ़ाएं गणित' इस अंक की उपलब्धि हैं। दोनों ही लेख बहुत उपयोगी हैं।

लगे हाथ इस अंक के बारे में एक–दो बातें और कहना चाहता हूं। आपने इसमें कृष्ण कुमार की टिप्पणी उदास लड़कों का राज प्रकाशित की है। यह टिप्पणी एकलव्य द्वारा प्रकाशित दीवार का इस्तेमाल एवं अन्य लेख से ली है। इसका उल्लेख नहीं है। ख़ैर यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस टिप्पणी में आपकी ओर से भी एक टिप्पणी जानी चाहिए थी। यह टिप्पणी आज से लगभग बीस से पच्चीस बरस पुरानी है। हालांकि दीवार का इस्तेमाल एवं अन्य लेख में इसका कोई उल्लेख नहीं है। इस पुस्तक का विमोचन कृष्ण कुमार की उपस्थिति में एकलव्य भोपाल में ही हुआ था। तब मैंने ख़ास इस टिप्पणी पर उनसे सवाल किया था। क्योंकि इस टिप्पणी का अंत जिस तरह से है,वह उनके हाल के लेखन से मेल नहीं खाता। तभी उन्होंने यह बताया था। दूसरी बात आज के लड़कों के संदर्भ में यह टिप्पणी ज्यों की त्यों लागू नहीं होती। आज के लड़कों की चिंताएं और हरकतें कुछ अलग क़िस्म की हैं। जो भी पाठक दीवार का इस्तेमाल एवं अन्य लेख के बारे में नहीं जानता वह इस टिप्पणी को आज के संदर्भ में लिखी गई टिप्पणी मानकर ही पढ़ेगा। दीवार का इस्तेमाल एवं अन्य लेख संग्रह की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि उसमें टिप्पणियों का लेखन या प्रकाशन काल नहीं दिया गया है। इससे उसे पढ़ते हुए बहुत असुविधा होती है।

दूसरी बात बुनियादी शिक्षा में ''गुजरात'' को ''गूजरात'' लिखा जा रहा है। यह जानबूझकर लिखा जा रहा है या प्रूफ़ की गलती है। यह बहुत खटकता है।

राजेश उत्साही
अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, बैंगलोर

टिप्पणी– *पिछले अंक में 'उदास लड़कों का राज' नामक लेख एकलव्य द्वारा प्रकाशित 'दीवार का इस्तेमाल एवं अन्य लेख' से साभार किया था। लेख के साथ यह टिप्पणी नहीं जा पाई थी।*
गूजरात विद्यापीठ की स्थापना के दौरान (शायद गांधीजी ने) ही गुजरात को 'गूजरात' लिखा था। तभी से यह परंपरा सी बन गई है। इसीलिए गूजरात विद्यापीठ लिखा जा रहा है।

संपादक

प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम और सीखना

★ हृदय कांत दीवान

सीखना क्या है

बच्चों के सीखने के बारे में बहुत से तकनीकी मुद्दे जुड़े हुए हैं। बच्चे पढ़ना कैसे सीखते हैं, बच्चे गिनना कैसे सीखते हैं, इन सबको करने में क्या क्रम हो सकता है आदि। पढ़ना सीखने में और पैटर्न पहचानने में क्या संबंध है। पढ़ना व व्यक्त करना और सोच पाना, तर्क कर पाना इस प्रकार की क्षमताओं में क्या कोई अंतर्संबंध हैं? याद करना (दोहरा पाना) सीखना नहीं है, वह रटना ज़रूर हो सकता है। सीखने से तात्पर्य है समझने से और कम से कम अवधारणा की समझ की शुरुआत हो। जैसे कि बच्चों को गणित पढ़ाने में 1 से 100 तक गिनती एक क्रम में बोलना आना ज़रूरी है। लेकिन बच्चों से यह अपेक्षा कब करनी चाहिए? और क्या सिर्फ़ इतनी ही अपेक्षा रखना बच्चों की क्षमताओं का अवमूल्यन करना नहीं है? हमारे लिए 100 तक क्रम में गिनती बोल पाने से भी ज़्यादा आवश्यक है कि बच्चा 20 या 30 तक वस्तुओं को गिन पाए। यह बता पाए कि गिनती की क्रम संख्या के छोटे–बड़े होने पर कैसे निर्भर है। और यह भी कि कोई भी संख्या उदाहरण के लिए पांच इस बात को इंगित करती है कि किन्हीं ''पांच'' चीज़ों की बात हो रही हो सकती है। जब तक बच्चों के मन में संख्याओं का जुड़ाव वास्तविक परिस्थितियों से होकर वापस बिना किन्हीं वस्तुओं की आवश्यकता के संख्या की समझ तक नहीं पहुंचेगा तब तक हम कह सकते हैं कि उसे गिनती समझ में नहीं आई है। दूसरी बात यह है कि सीखना एक प्रक्रिया है न कि एक घटना। इसका अर्थ यह है कि जब भी हम कुछ करते हैं उससे हम कुछ सीखते हैं। कोई ऐसा पल नहीं होता जब हम कह सकें मैं इसके बारे में कुछ नहीं जानता था और अब जान गया। सीखना धीरे–धीरे ही हो पाएगा और हमारी अवधारणाएं धीरे–धीरे ज़्यादा व्यापक और ज़्यादा संदर्भों में

★ विद्या भवन सोसायटी के शैक्षिक सलाहकार हैं। शिक्षा एवं समाज के मसलों पर निरन्तर चिंतन एवं लेखन करते हैं।

उपयोग के लायक बनती जाएगी।

सीखना, बच्चे के लिए अपने आसपास की बातों को समझने, उनका उपयोग करने, अपनी ज़रूरतों को सशक्त रूप से रखने, उनके लिए संघर्ष करने, अपनी ज़िन्दगी को मज़ेदार बनाने, समाज में अपना एक स्थान बनाने आदि इतने सब कारणों से महत्त्वपूर्ण हो सकता है। सीखने की इस अलग–अलग सार्थकता का सीखने के प्रति दृष्टिकोण व उसके प्रति दृढ़ता पर प्रभाव होता है।

सीखने के आधार

पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया का आधार यह भी है कि किसी बात को सीखना तभी संभव है जब उसके अलग–अलग पहलू उभरें। इनसे ही धीरे–धीरे अवधारणा समझ में आएगी। इन पहलुओं में कुछ उस अवधारणा के अन्य बातों के साथ संबंध हो सकते हैं। कुछ उसके ज़्यादा पैने इस्तेमाल से संबन्धित हो सकते हैं और कुछ मिलती–जुलती बातों के साथ समानता व अंतर की समझ के हो सकते हैं। कुछ इस बात से हो सकते हैं कि वह अवधारणा और उससे जुड़ी विचार श्रृंखला किन परिस्थितियों को समझने में मदद देती है और किनको नहीं, यानीकि किन समस्याओं का हल उससे जुड़ा है। इसके लिए हमें बच्चे द्वारा किए गए कार्य का ध्यान से अवलोकन कर उसे समझना होगा। इस समझ की कोशिश के बाद ही हम उसे उपयुक्त गतिविधियों की तरफ़ ले जा पाएंगे। यहां आकलन इसलिए है कि शिक्षक जान सके कि बच्चे क्या सीखे हैं, वह बच्चों को भी यह बता पाए कि उन्होंने क्या सीखा है और इसके आधार पर उन्हें आगे क्या सीखना है और यह सोच पाए कि उनके आगे जाने के लिए कौन सी गतिविधियां हैं।

उदाहरण के लिए आयतन की अवधारणा को लें। बच्चा यह जानता है कि पतीले (गंजी) या गिलास में कम दूध है या अधिक, उसमें तल की ऊंचाई से मालूम किया जा सकता है। वह यह भी आसानी से सोच सकता है कि एक छोटे बर्तन से बड़े बर्तन में द्रव (पानी या दूध) डालने के लिए कई बार छोटे बर्तन को भरकर उड़ेलना पड़ता है। लेकिन अलग–अलग आकार के बर्तनों में पानी की मात्रा की तुलना करना काफ़ी बाद में आता है। इसी तरह से शुरू में ही समूहीकरण करने में बच्चे बहुत स्पष्ट गुणधर्मों के आधार पर बंटवारा कर सकते हैं। वह समूहीकरण को शायद सिर्फ़ वस्तु छांटने के रूप में देखे। समूहीकरण की ज़्यादा व्यापक समझ बनाने के लिए ज़रूरी है, समूह में से चीज़ें अलग–अलग तरह के आधारों पर छांटना जैसे रंग, गंध, आकार, उपयोग आदि आदि। इस अवधारणा को और गहरा करने के लिए यह भी आवश्यक है कि धीरे–धीरे बच्चे कम अंतरवाली चीज़ों के और अमूर्त गुणधर्मों के आधार पर भी समूह बनाना सीखे।

बच्चे सीखते कैसे हैं?

स्कूल लगातार दूसरी अन्य संस्कृतियों पर टिप्पणी किए बिना आगे नहीं बढ़ता। यह टिप्पणी बच्चे के स्वाभाविक जोश और उसकी जिज्ञासा को धीरे–धीरे कम करती जाती है। स्कूल के संवाद में यह दबाव होता है कि गुरुजी की भाषा बच्चे समझें। लेकिन इस पाठ्यक्रम मे यह माना गया है कि अध्यापक को शुरू से बच्चों की भाषाएं भी सीखनी चाहिए। इसी से वह बच्चे की बात समझ पाएगा और उसे अपनी बात पहुंचाएगा। इसी प्रक्रिया में धीरे–धीरे बच्चा उसकी बात समझने लगेगा। मुख्य बात यह है कि बच्चे सीखते तभी हैं जब वह उस प्रक्रिया में सक्रिय हों। सिर्फ़ बैठकर सुनने से या सुना हुआ दोहराने से सीखना नहीं होता। यह सक्रियता तभी होगी जब बच्चों की भाषा शिक्षक समझेगा और इस्तेमाल करेगा। हर बच्चे का सीखने का तरीक़ा अलग हो सकता है। कोई शायद दबाव डालने पर सीखे, कोई प्यार से, कोई प्रलोभन से। कोई प्यार

पाने के लिए सीखे तो कोई सिर्फ़ बाक़ी बच्चों पर रोब डालने के लिए या फिर घरवालों को प्रभावित करने के लिए सीखे। बच्चे के जीवन और परिस्थिति के साथ–साथ यह बदलता भी रहेगा।

पाठ्यक्रम की कसौटी

ज़्यादातर लोग मानते हैं कि शहरों के पढ़े–लिखे लोगों के बच्चों के लिए सीखना सरल होता है। लेकिन बहुत सी चीज़ें ऐसी हैं जो काम करनेवाले बच्चे ज़्यादा जानते हैं। किसान का बेटा खेती के बारे में बहुत कुछ जानता है, ग्वाला पशुओं के बारे में। पाठ्यपुस्तक में यह सब लिखा जा सकता है लेकिन इन्हें लिखनेवाले ऐसे लोग होते हैं जो खेत को बैठे ठाले जानते हैं। उनके लिए बच्चों के अनुभवों का निचोड़ संचित कर पाना बहुत ही मुश्किल है। इसीलिए पूरे पाठ्यक्रम का झुकाव किताबी ज्ञान हो जाता है। और इस पाठ्यक्रम में एक ख़ास परिवेश के बच्चे ही ज़्यादा अच्छा करेंगे। बाक़ी बच्चे लटकते रहते हैं और फिर किसी दिन घबराकर स्कूल छोड़ देते हैं। अगर संभव होता भी है कि कुछ हद तक यह सार प्रस्तुत किया जा सकता है तो भी सभी प्रकार के अनुभवों का सार प्रस्तुत करना तो बहुत मुश्किल है। दो–तीन, चार घण्टों का अनुभव तो शामिल किया जा सकता है पर क्या वह पर्याप्त है? शायद यह है कि पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक यह सोचकर नहीं बनायी जाती कि किसी गांव के तीन–चार घरों या स्कूलों के बच्चे या फिर एक घर में से परिवेश के बच्चे क्या सोचते हैं। ग्वाले और कुम्हार के बच्चों की आयतन की समझ कई और अनुभव के दायरे से स्कूल आ रहे बच्चों की समझ से बहुत फ़र्क़ हो सकती है। इसलिए इसमें शिक्षक की भूमिका, उसके लिए उपलब्ध लचीलेपन व खुली जगह का बहुत महत्त्व हो जाता है।

प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम

पढ़ने–पढ़ाने के संदर्भ में एक ज़रूरी अहसास यह है कि बच्चों को हमें वही सिखाने की कोशिश करनी चाहिए जो वे उस समय सीख सकते हैं। पढ़ाने की क्या गतिविधियां हों? और वे किस तरीक़े की हों, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे किस तरह के कार्यों में शामिल होकर उनसे सीख सकते हैं। यह इस समझ के विकल्प के रूप में है जिसमें शुरुआत इस बात से की जा सकती है कि उस कक्षा के बच्चों को क्या सीखना चाहिए? अक्सर हमारे लिए यह समझना मुश्किल हो जाता है कि बच्चा एक बात को क्यों नहीं समझ पा रहा है। हम एक सामान्य समझ यह तो बना सकते हैं जिसके आधार पर हम यह तय कर सकते हैं कि औसतन बच्चे कक्षा एक में यह सब सीख सकते हैं और कक्षा पांच में यह सब। लेकिन इस समझ का अर्थ न तो यह है कि हर बच्चा कक्षा एक में सोची गई चीज़ें कक्षा एक में ही सीख जाएगा और न ही यह कि सीखना उस प्रक्रिया पर निर्भर है जिससे होकर बच्चा स्कूल और स्कूल के बाहर गुज़र रहा है। यह ज़रूर हो सकता है कि हम वह संबंध न पहचान पाएं और कक्षा के कार्यक्रम में उचित संशोधन न कर पाएं।

प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में क्या पढ़ाया जाए के साथ–साथ पढ़ाने के तरीक़े को भी जोड़ा गया है। यह माना गया है कि पढ़ाने का क्या तरीक़ा हो, क्या पढ़ाया जाए? सवाल का ही एक हिस्सा है उससे अलग नहीं हैं। इस पाठ्यक्रम में क्षमताओं के विकास को महत्त्व दिया गया है। यानी प्राथमिक शाला के अंत तक बच्चा पढ़ पाए, लिख पाए, अपने आपको व्यक्त कर पाए, चीज़ों में अंतर कर पाए, उसमें समानताएं देख पाए, पैटर्न पहचान पाए, नाप पाए, और भी इसी तरह की बातें पांचवीं तक की सूची में होंगी। यह ज़रूरी नहीं कि बच्चे को किताब की सभी कविताएं याद हों। शिक्षक को ऐसा प्रयास करने की ज़रूरत नहीं है, उसे पूरी किताब ख़त्म करने की भी ज़रूरत नहीं। जो कविताएं बच्चों और

शिक्षक को पसंद आती हैं उन्हें ही सामूहिक रूप से गाया जाए। यदि बच्चे कोई गीत गाते हैं तो उसे भी बोर्ड पर लिखा जा सकता है और गाया जा सकता है। कविता का उपयोग कुछ विशेष कविताएं याद करवाना नहीं है बल्कि अधिक से अधिक कविताएं बच्चों को सुनाना है। पाठ्यपुस्तक एक सम्पूर्ण सार तत्त्ववाली नहीं है बल्कि अलग–अलग प्रकार की गतिविधियों की एक झलक है। पुस्तक में ऐसे उदाहरण हैं जिनमें बच्चों की ख़ूब भागीदारी हो।

गतिविधियां

यह भी साफ़ है कि कोई भी ऐसा एक तरीक़ा ईजाद कर पाना जो हर समय उस उम्र के हर बच्चे के लिए लागू होगा, संभव नहीं है। सभी बच्चे कंकड़ के समूहों की तुलना करके गिनती नहीं सीख सकते हैं। किसी एक गतिविधि से तो कोई भी नहीं सीख सकता। यहां तक कि गतिविधि की एक समान शृंखला से भी सभी नहीं सीख सकते। इसके लिए कई तरह की चीज़ें बच्चों से करवाई जानी होगी और कई तरह से; कुछ जो उसे अकेले करनी हैं, कुछ जो टोली के साथ करनी हैं, कुछ जो पूरी क्लास में। कुछ क्रियाओं में एक दूसरे की मदद करना है, कुछ में अकेले बैठकर करना व सोचना है, कुछ में खेल है, कुछ में स्वतंत्र उठा पटक है, कुछ में शायद प्रतिस्पर्धा है और यह सब मिलकर बच्चे को एक संपूर्ण मानसिक दृश्य दे सकती हैं। गतिविधि से यह मतलब कतई नहीं है कि गतिविधि करवा दी और काम ख़त्म। ज़रूरी यह है कि हम यह समझ पाएं कि करवाई गई गतिविधि से बच्चों ने क्या सीखा और आत्मसात् किया।

अगर हम यह मानते हैं कि बच्चा धीरे–धीरे क़दम बढ़ाकर सीखता है तो यह आवश्यक हो जाता है कि सिखानेवाली गतिविधियों को कई बार दोहराया जाए।

गतिविधियों और सीखने के तरीक़ों का चुनाव

पढ़ने–पढ़ाने की गतिविधियों का आधार ऐसी गतिविधियां हों जिनमें बच्चों को सोचना पड़े, सिर्फ़ याद करके उन्हें दोहराना न हो।

हमारे पाठ्यक्रम का यह भी आधार है कि बच्चों को एक ही अवधारणा को समझने के लिए कई अलग–अलग तरह के मौक़े मिलते रहें। यदि कोई बच्चा पहली बार उस बात को किसी भी कारणवश नहीं पकड़ पाया है और उस तरीक़े के प्रति उसके दिमाग़ में एक प्रतिरोध बन गया है, तो उसके पास और भी मौक़े हों दूसरे तरीक़े से वही बात समझने के। अगर हम ऐसे मौक़े न दें तो जो बच्चा एक बार पिछड़ जाता है वह फिर पिछड़ता ही जाएगा। बार–बार एक ही तरीक़े से बात को दोहराना उन बच्चों को बहुत ही हतोत्साहित कर देता है जो उसे समझ नहीं पाए। मान लो हम बच्चे को गिनना सिखाते हैं और वह सीख नहीं पाता तो आगे वह जोड़, घटा कुछ नहीं सीख पाएगा। इसीलिए हम बात करते हैं कई अलग–अलग तरीक़े से, अलग–अलग समय पर गिनती सिखाने की प्रक्रिया को दोहराने की। उन्हीं शब्दों में उसी लय में कोई बात दुबारा समझा देना बहुत उपयोगी नहीं है। यदि पहली बार बच्चों को बात समझ में नहीं आई है तो कोई कारण नहीं कि वही तरीक़े दूसरी बार उसे सिखा पाएं।

दोहराने के चुनाव में कुछ अन्य बातें भी ध्यान में रखनी चाहिए। पहली तो यह कि गतिविधि का चुनाव करते समय हम यह मानकर चलते हैं कि किसी विशेष गतिविधि से बच्चे कुछ ख़ास चीज़ सीखेंगे। उदाहरण कंकड़ इकट्ठा करवाकर गिनवाने से हम यह मानते हैं कि हमने बच्चे को गिनती

सिखाने का अभ्यास करवा दिया। लेकिन बच्चे को हो सकता है पत्थर के रंग या उनके आकार ने ज़्यादा आकर्षित किया हो और उस दिन उसने रंग सीखे हों न कि गिनती। इसमें दो बातें निहित हैं एक तो यह कि हमें इस तरह की और यही गतिविधि अलग–अलग तरह से कई बार दोहरानी चाहिए। दूसरी यह कि सीखना एक निश्चित ढंग और दिशा में होनेवाली प्रक्रिया नहीं है। गतिविधि को दोहराना इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि सभी बच्चों की सीखने की गति एक समान नहीं होती है। हो सकता है कुछ बच्चे पढ़ना जल्दी सीख सकें और कुछ बच्चे गिनना या जोड़ना। ऐसा भी हो सकता है कि किसी एक दिन बच्चे का ध्यान केन्द्रन व आत्मविश्वास अधिक हो और किसी और दिन कुछ कम। इसके अलावा बच्चों के नियमित रूप से स्कूल न आ पाने के कारण भी यह आवश्यक है कि गतिविधियां दोहराई जाएं।

एक ही अवधारणा के लिए कई गतिविधियां और तरीक़े हैं। हम यह भी मानते हैं कि सभी बच्चे एक ही ढंग से नहीं सीखते। इन अलग–अलग ढंगों से सीखनेवाले बच्चों के समूह में से ज़्यादा से ज़्यादा सीखें इसके लिए यह ज़रूरी है कि वे एक ही बात की समझ विकसित करने के लिए कई अलग–अलग तरह की गतिविधियां कई–कई बार करते रहें। गतिविधि का चुनाव करते समय, उसका असर देखते हुए कभी–कभी यह भी सोचना होगा कि किस एक गतिविधि से बच्चे क्यों कुछ भी नहीं सीख पाए प्रतीत होते। क्या गतिविधि रोचक नहीं थी, क्या वह मुश्किल है, क्या उसे सब नहीं कर सकते, क्या वह ठीक से नहीं हो पाई (समय ठीक नहीं था, सामग्री नहीं थी, नियम ठीक से नहीं बता पाए, व्यवस्था नहीं जम पाई) या फिर उस बात के लिए वह गतिविधि अधूरी है, या अनुपयुक्त है और एक वैकल्पिक गतिविधि चाहिए।

स्कूल में बच्चों को करके देखने के मौक़े

यह ज़रूरी नहीं है कि शुरुआत से ही अवधारणा बच्चा शिक्षक के स्तर से समझे। बच्चा शुरू में उस बात का थोड़ा सा ही हिस्सा समझेगा और वही हिस्सा जो उसके अनुभव के दायरे में है। इस अनुभव क्षेत्र को बढ़ाने के लिए यह भी ज़रूरी हो जाता है कि बच्चे को मौक़ा हो चीज़ों से खेलने का उन्हें अलग–अलग ढंग से देखने का, महसूस करने का, उनके बारे में विचार व्यक्त करने का अपनी समझ व नज़रिए का आकलन, पुष्टि या परिवर्तन करते रहने का।

इस संदर्भ में ठोस वस्तुओं, ऐसी चीज़ें जिन्हें बच्चा देख सकता है, छू सकता है, पकड़ सकता है, पटक सकता है, सूंघ सकता है, चख सकता है, ठोक सकता है, शायद मुंह में डालकर भी देख सकता है, का महत्त्व बहुत हो जाता है। इसी तरह के परीक्षण ही बच्चे के लिए आगे सीखने के आधार हैं। जितना वह ठोस चीज़ों से खेलेगा, उनके बारे में जानेगा उतना ही वह उसमें समानताओं, असमानताओं और विशिष्ट गुणों का अहसास कर पाएगा। इसी को बाद में हम इस्तेमाल कर उसे अमूर्त अवधारणाएं सिखा सकते हैं। किन्तु शिक्षकों को पत्तियों से तरह–तरह की क्रियाएं करना (खेल–खेलना) एक ग़ैर ज़रूरी बात लगती है। उन्हें लगता है कि बच्चे को क़ायदे से क, ख, ग लिखवाना ज़्यादा ज़रूरी है। यदि हम पत्तियों के खेल के बारे में सोचें तो उसमें हमें कई बातें दिखती हैं। यदि बच्चा सिर्फ़ पत्तियों को इधर–उधर रखता है व उन्हें छूकर व देखकर एक दूसरे से तुलना करता है तो भी वह पत्तियों की सतह को महसूस करता है। वह यह महसूस करता है कि हर पत्ती की सतह छूने पर एक जैसी नहीं लगती है। देखने में भी किसी में ज़्यादा जाली हैं किसी में कम, किनारे और नोक भी अलग–अलग हैं। आकार में भी कुछ बड़ी हैं तो

कुछ छोटी। पत्ती पत्थर की तरह दूर नहीं फेंकी जा सकती और वह धीरे–धीरे नीचे गिरती है आदि–आदि। यह भी ज़रूरी नहीं कि बच्चा हर पत्ती में ये सब बातें देखें या फिर ये सब बातें देख ही पाए, लेकिन ऐसे मौक़े उसे इसमें मदद करते हैं। इन मौक़ों से ही इन सबके बारे में उसे अपने अहसास बनाने के मौक़े मिलते हैं। इस तरह के अनुभव के दौरान यदि उससे बातचीत की जाए तो वह और भी ज़्यादा बारीक़ अवलोकन व अनुभव करने के लिए तैयार होता है। अमूर्त बातों को समझने के लिए अमूर्त स्तर पर सोचने व बात करने के लिए यह ज़रूरी है कि दिमाग़ ठोस अनुभवों से भरपूर हो। जिस बात पर अमूर्त चिन्तन किया जाना है उसके बारे में दिमाग़ में ठोस छवि होनी चाहिए, जो इस चिन्तन के दौरान व्यापक बनेगी, गहरी होगी और बदलेगी भी। इसके बिना बच्चे अमूर्त बात का अपने से संबंध ही नहीं बना पाते।

सीखने की प्रक्रिया में बच्चों के अनुभव

बच्चे के लिए क्या ठोस है और क्या अमूर्त यह उसके अनुभव स्तर पर आधारित है। अमूर्त बातों से जूझने का कौशल बच्चों में कुछ बड़े होने पर आना ज़्यादा संभव है। जैसे बहुत से बच्चों के लिए चित्रों को देखकर वस्तु की कल्पना करना संभव होता है। चित्र दिखाने पर वे उसे एक मानसिक छवि से जोड़ पाते हैं। इस छवि की बुनियाद पर वे आगे की बातों को समझते हैं। यानी वे इन चित्रों से शुरू करके अपने सीखने को आगे ले जा सकते हैं। यह सब चित्रों के साथ नहीं हो सकता। ऐसे बच्चे जिनके लिए चित्र नए हैं, जिन्होंने स्कूल के बाहर बहुत से चित्र नहीं देखे और उनपर कोई बातचीत नहीं की, उनको पहले चित्र पढ़ना सीखना होगा। उनके लिए यह नहीं माना जा सकता है कि चित्र बच्चे के लिए ठोस वस्तु की छवि को उभारते हैं और ठोस वस्तु के स्थान पर इसका उपयोग किया जा सकता हैं। उदाहरण के लिए सिर्फ़ रेल का चित्र दिखाने की बजाए यह अच्छा है कि वहां रेलगाड़ी बनने का नाटक किया जाए और शिक्षक व बच्चे मिलकर रेलगाड़ी बनें। ऐसी चीज़ें जिन्हें कक्षा में लाया जा सकता है उनके बारे में सिर्फ़ शब्दों में बातचीत करना तो बिल्कुल बेमानी है। हम चाहते हैं कि बच्चों के अनुभव को आधार बनाकर उन्हें सीखने का मौक़ा मिले, पर यह उपयोग दूसरी जगहों, दूसरे अनुभवों के आधार पर हो सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें कुछ नए तरीक़े के अनुभव दें और उनका अध्ययन उनके सामान्य अवलोकनों के साथ करवाएं। कुछ ऐसी चीज़ें जो उनके अनुभव में नहीं हैं उन्हें करवानी आवश्यक हैं। इन सब पर विचार करके अपनी समझ संश्लेषित करने का उन्हें मौक़ा देना ज़रूरी है। हमारा मानना है कि बच्चे के लिए सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वह अपने अनुभवों को एक धागे में बांधने के लिए कोई परिकल्पना बनाता है, उसे आज़माता है, परखता है और फिर ज़रूरत हो तो बदल लेता है। उदाहरण के लिए जब एक बहुत छोटा बच्चा बिजली के स्विच को ऑन करता है तो बल्ब जल जाता है। वह एक परिकल्पना बनाता है कि स्विच ऑन करने से बल्ब जलता है। इसी को वह कई बार दोहराता है। फिर वह कोई दूसरा स्विच ऑन करता है तो उससे कोई बल्ब नहीं जलता। वह शायद अपनी परिकल्पना इतनी जल्दी नहीं बदलता लेकिन उसे इससे कौतूहल ज़रूर होता है। इस तरह के कई अनुभवों के बाद उसे धीरे–धीरे बल्ब जलाने और स्विच ऑन करने के बीच अलग–अलग स्विच द्वारा निर्धारित संबंध समझ में आने लगता है। इस कड़ी में हो सकता है उसकी नई परिकल्पना हो कुछ स्विच ऑन करने से बल्ब जलता है और कुछ से नहीं। सामान्य तौर पर इस सरल बात को समझने की यह लम्बी प्रक्रिया हमको अटपटी लगेगी। कितना सरल है बच्चे को यह बता देना कि ''जो

स्विच बल्ब से जुड़े हैं उन्हें ऑन करने से बल्ब जलेगा, यदि बिजली गई हुई न हो।'' पाठ्यक्रम का यह मानना है कि यह बता देनेवाला तरीक़ा ग़लत है। बच्चा इस बताए कथन को समझ नहीं सकता। उसे अपनी बुनियाद पर अपने नए अनुभवों को आधार बनाकर धीरे–धीरे ऐसे कथन की तरफ़ बढ़ना है जो कुछ हद तक उसने ख़ुद रचा है। यानी उसे सिखाने का तरीक़ा है ऐसी गतिविधियां करने का मौक़ा देना, ऐसी समस्याएं हल करने का मौक़ा देना जो उसके लिए एक चुनौती है, जो उसके लिए नई व रोचक है। इन्हीं के अनुभवों के आधार पर वह आगे सीख पाएगा।

घर और स्कूल का अन्तर्सम्बन्ध

प्राथमिक शाला की शुरुआत में अधिकांश बच्चों को एक और बात से जूझना होता है और वह है स्कूल और घर की संस्कृति में अंतर। बच्चे के लिए स्कूल की बातों और घर की बातों में संबंध होना चाहिए। यदि स्कूल व घर की बोली, मूल्य, बर्ताव आदि में बहुत फ़र्क़ है तो कभी–कभी जो स्कूल में सही है वह घर में ग़लत हो सकता है। लेकिन आम तौर पर व्यवहार में इसका उल्टा ही होता है, घर की कई बातें स्कूल में सही नहीं लगती हैं।

बच्चों के घरों की परिस्थितियों में अंतर होने के कारण उनके अनुभवों का दायरा अलग–अलग हो ही सकता है। और इस दायरे के अन्तर में बात सिर्फ़ यह नहीं है कि उनके घर में किताबें या पत्रिकाएं हैं या नहीं, रेडियो है या नहीं, माता–पिता व अन्य लोग पढ़े–लिखे हैं या नहीं, पढ़ने–लिखने को महत्त्वपूर्ण मानते हैं या नहीं। बल्कि यह भी है कि उसे क्या ठीक से खाने को मिलता है, उसके माता–पिता उसे स्लेट बत्ती भी दिलवा सकते हैं कि नहीं आदि। यदि एक पाठ में घर के खाने का वर्णन है जिसमें तरह–तरह के व्यंजनों की बात है तो क्या मिर्च या प्याज से रोटी खानेवाले एक बच्चे को वह विवरण अपने जीवन का हिस्सा लगेगा? शहरों और गांव के बच्चों में तो इन सबमें बहुत अंतर होगा ही पर गांव के और शहर के विभिन्न प्रकार के परिप्रेक्ष्य से आए बच्चों में बुनियादी अन्तर होता है। इसका कक्षा पर क्या असर हो, यह सोचने की बात है।

कक्षा का स्वरूप और शिक्षक व बच्चों का रिश्ता

सीखने की और बच्चों की कक्षा में सक्रियता के लिए एक और चीज़ ज़रूरी है, वह है कक्षा में एक माहौल जिसमें बच्चे भी बातचीत कर रहे हैं, खेल रहे हैं और कभी–कभी सीमित निर्णय भी ले रहे हैं कि वे क्या करना चाहते हैं, क्या खेलना चाहते हैं। इस बारे में भी उनकी राय ज़रूरी है कि कब गतिविधि बदलनी चाहिए और क्या नई चीज़ करनी चाहिए। बच्चों के घरों की परिस्थितियां अलग–अलग होने के कारण कि यदि हमें सब बच्चों की सक्रिय भागीदारी चाहिए, उनमें आत्म–विश्वास चाहिए तो हमारे लिए पाठ्यक्रम व दैनिक टाइमटेबल में शिक्षक व बच्चों को बहुत कुछ निर्धारित करने का मौक़ा होना चाहिए। कक्षा ऐसी हो कि शिक्षक अपने छात्रों–छात्राओं के अनुभव के दायरे का उपयोग कर सके और उसी के आधार पर दैनिक कार्यक्रम गढ़ सके। उसमें वह प्रत्येक विद्यार्थी के अनुभव का अन्य विद्यार्थियों को सिखाने के लिए उपयोग कर सके। प्राथमिक शाला के पाठ्यक्रम में इसका प्रावधान है कि शिक्षक यह कोशिश कर सके और अपनी सृजनात्मकता को भी पूरा मौक़ा दे सके।

शिक्षक व बच्चों के संबंध भी पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया का ही एक हिस्सा है। जिस तरह का छात्र आप स्कूल में बनाना चाहते हैं जो वयस्कों के साथ उसका रिश्ता स्थापित करवाना चाहते हैं वह पाठ्यक्रम का आधार है और उसका मूर्त रूप शिक्षक व बच्चों का संबंध भी हैं।

बच्चों का मूल्यांकन या आकलन

सीखने की मात्रा हर व्यक्ति के लिए अलग–अलग हो सकती है और इसके संदर्भ में सवालों का जवाब देने का आत्मविश्वास भी अलग–अलग हो सकता है। इसलिए किसी कक्षा में यह कहना कि एक बच्चा कुछ नहीं सीखा और दूसरा सब सीख गया, दोनों ही सही नहीं है। सीखनेवाले बहुत टेढ़े–मेढ़े तरीक़े से, आगे–पीछे होकर, कूदकर आगे जाने, फिसलकर वापस आने और न जाने कितने ही तरीक़े से सीखते हैं। लेकिन कभी भी 'यह एक सीढ़ी पर है' यह कहना संभव नहीं है। इसीलिए यह ज़रूरी है कि बच्चों से बातचीत में और वास्तव में किसी भी सीखनेवाले से बातचीत में इस बात का ध्यान रखा जाए।

सीखने में शायद रैम्प पर चढ़ने की तरह की मंज़िल निर्धारित हो सकती है। यानी यह बच्चा अब पहले चरण पर पहुंच गया है और यह अभी वहां नहीं पहुंचा है। लेकिन यह मंज़िल भी एक लम्बे समय की तुलना है और उसमें भी पहुंच गया और क़रीब है का आभास है। मात्र शून्य और एक, यह दो ही स्थिति हो ऐसा नहीं है। इसी बात का ध्यान रखकर ही बच्चों को उनके कार्य पर फीडबैक दिया जाए। यह फीडबैक उनके द्वारा सीखी गई चीज़ों का आकलन है, बच्चों का मूल्यांकन नहीं। इन दोनों में काफ़ी बड़ा अन्तर है। आकलन इस बात का होता है कि बच्चों को क्या आता है? इस बात का नहीं कि उन्हें क्या नहीं आता। कोई पूर्ण रूप से निर्धारित अपेक्षित स्तर नहीं है, जहां उन्हें इतने समय में पहुंच जाना ही है। पर यह जानने के लिए कि वे कहां हैं और उन्हें आगे कहां ले जाना है, इसके लिए परीक्षण और आकलन आवश्यक है।

सीखना एक लगातार प्रक्रिया है

इस बात को समझने का एक तरीक़ा है रैम्प और सीढ़ी में तुलना। अगर हम इस बात को मान लें कि सीखना ऊपर जाना है (यहां ऊपर और नीचे दिशा है, कोई मूल्य इसके साथ नहीं जुड़ा है) तो यह तो हम कह सकते हैं कि सीखनेवाला सीढ़ियों से ऊपर चढ़ता है यानी पहली सीढ़ी पर है तो उसने इतना सीख लिया। अब आगे सीखने का अर्थ है कि वह अगली सीढ़ी पर पहुंच जाए। जब तक वह अगली सीढ़ी पर नहीं पहुंचा उसने कुछ नहीं सीखा, दो ही स्थिति है या तो वह जानता है या नहीं जानता। हमें लगता है कि आज की शिक्षा में सीखने को सीढ़ी की तरह समझा जाता है जिसमें सिर्फ़ नतीजे पर ध्यान दिया जाता है और प्रक्रिया को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है। हमारे हिसाब से सीखना रैम्प पर चढ़ने के ज़्यादा क़रीब है जिसमें सीख गया और बिल्कुल नहीं आता के बीच में बहुत क़दम हैं।

छोटे बच्चों को प्रोत्साहित करना उनके सीखने के लिए ज़रूरी है। उनके द्वारा किए गए कार्य पर सकारात्मक टिप्पणी, उन्हें आगे बढ़ाने की संभावनाओं के लिए बहुत ज़रूरी हैं। कहीं भी उन्हें ऐसा अहसास न हो कि यह काम तो उनके बस के बाहर का है। इसीलिए बच्चों को बुद्धू गंवार, पिछड़े हुए आदि परिभाषाओं में बांटना उनकी वहां से बढ़ पाने की संभावनाओं को काफ़ी कम कर देता है। इस सबका मतलब यह नहीं है कि बच्चों को यह न बतलाया जाए कि सही क्या है, उन्होंने क्या ग़लती की है? किन्तु ग़लती करने को सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा माना जाए और ग़लती बताने से ज़्यादा इस बात पर ध्यान दिया जाए कि उनसे कौन सी गतिविधि करवाएं, क्या अभ्यास करवाएं जिससे उनकी ग़लती दूर हो सके। पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रियाओं का निर्धारण व संचालन और इसमें मूल्यांकन का कारण बच्चों की क्षमताओं का आकलन करने के लिए है न कि उनको होशियार–बुद्धू के खांचों में डालने के लिए।

शिक्षक की भूमिका

प्राथमिक शाला में शिक्षक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण है यह हम जानते ही हैं। इसे एक दृढ़ विश्वास के रूप में माना गया है कि शिक्षक की भूमिका असाधारण है। सामग्री व संभव उपयुक्त गतिविधियों के प्रकार की जानकारी से ज़्यादा उसको करवाने की इच्छा महत्त्वपूर्ण है और क्यों करवानी चाहिए? इसकी समझ महत्त्वपूर्ण है। हमारा यह मानना है कि शिक्षक को दैनिक डायरी, मासिक इकाई और अन्य बंधनों में बांधकर यह सब नहीं करवाया जा सकता है। ज़रूरत है उसे ज़्यादा स्वतंत्रता देने की। प्रतिदिन की गतिविधियों के निर्धारण में शिक्षक के पास लचीलेपन की आवश्यकता है जिससे वह कक्षा की परिस्थिति और बच्चों की ज़रूरत के आधार पर शिक्षण कर सके। उसे स्वतंत्रता हो यह तय करने की कि वह इस माह क्या करवाएगा। जब तक शिक्षक पाठ्यक्रम 'बनाने' में, पाठ्यक्रम 'तय' करने में अपनी भूमिका नहीं देखता है, उसके लिए पाठ्यक्रम से और पढ़ाने से बहुत जुड़ाव संभव नहीं है। उसे संभव गतिविधियां बताई जा सकती हैं, बच्चों को एक लम्बे अंतराल में क्या–क्या सीखना है यह मोटे तौर पर (क्षमताओं की तरह) दिया जा सकता है। सीखने का क्रम कैसे बनता है और कैसे आपस में जुड़ा है? उसे बताया जा सकता है लेकिन बाक़ी उसे ख़ुद तय करना है और करवाना है।

शिक्षक प्रशिक्षण का स्वरूप

शिक्षक यह सब कर पाएं इसके लिए आवश्यक है कि उन्हें कुछ ऐसी प्रक्रिया से गुज़ारा जाए जिससे उनकी झिझक और ''मैं नहीं कर सकता'' की मनोवृत्ति बदल जाए। यानी शिक्षक प्रशिक्षण का अर्थ कविता गाना व बनाना, कहानी एक्शन के साथ करना, नई कहानी बनाना, चित्र बनाना, रोल प्ले, मैदानी खेल, मिट्टी आदि से चीज़ें बनाना आदि भी है। इसमें बच्चों के सीखने की प्रक्रिया व तरीक़े की भी बात है। शिक्षा क्यों, किसकी शिक्षा, कैसी शिक्षा आदि की भी बात है, लेकिन इस सब में शिक्षक की भागीदारी हो, सक्रियता हो।

सही बात बार–बार दोहराने मात्र से आत्मसात् नहीं होती और व्यवहार में नहीं आती। उसके लिए आवश्यक है ख़ुद के अनुभव के आधार पर कुछ करना उसकी त्रुटियों को देखना और आगे बढ़ना। बहुत उपयुक्त तरीक़े जो शिक्षक को बताए अथवा समझाए जा रहे हैं भी सही ढंग से इस्तेमाल न होने पर निरर्थक हैं। इसीलिए ज़रूरी यह है कि शिक्षकों के तरीक़ों को ही धीरे–धीरे बेहतर बनाया जाए। शिक्षक प्रशिक्षण एक अनवरत प्रक्रिया है। इसके लिए विशेषज्ञों के भाषणों की आवश्यकता नहीं है। शिक्षकों के प्रयासों व अनुभवों को उनके साथ कुछ समय के बाद विश्लेषित करने और उन्हें किसी ढांचे के संदर्भ में समझने से ही धीरे–धीरे ढांचा भी उन्हें उपयुक्त व उपयोगी लगेगा। जो भी उन्होंने लिखा है उसे कक्षा में उपयोग करना, नये सवाल उभरना व उन पर चर्चा करना लगातार चलेगा। हम मानते हैं कि ऐसे पाठ्यक्रम जो शिक्षक विकसित करने में मदद करेंगे, उसे पढ़ाना भी उनके लिए रोचक होगा और संभव भी। क्योंकि यह ढांचा उन्हीं के द्वारा बना है इसलिए इस्तेमाल के आधार पर बदलने की स्वतंत्रता उन्हें है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि इस प्रक्रिया में वे भी लगातार सीख रहे होते हैं, कुछ नया कर रहे होते हैं, कुछ सृजनात्मक काम कर रहे होते हैं। वही व्यक्ति सीखने में किसी की मदद कर सकता है, जो यह मानता है कि वह भी अभी सीख रहा है। इस बात का अर्थ यह है कि पाठ्यक्रम शिक्षा को, शिक्षक को और शिक्षक की भूमिका व इस भूमिका के लिए उसकी तैयारी को बिल्कुल फ़र्क़ ढंग से देखता है। आज के संदर्भ में प्रशिक्षण का जो अर्थ है उसमें इस कार्यक्रम में शिक्षक की तैयारी के प्रयासों को शिक्षक प्रशिक्षण नहीं कहा जा सकता है, कोई अलग नाम देना होगा।

गांवों का विकास और गांधी

★ नारायणभाई देसाई

सेवाग्राम वर्धा में एनसीआरआई की ओर से गांधी की प्रासंगिकता पर सम्मेलन का आयोजन किया गया था। सम्मेलन की अध्यक्षता नारायणभाई देसाई ने की थी। नारायणभाई देसाई ने सम्मेलन के प्रारंभ में जो वक्तव्य दिया उसमें वर्तमान समाज, शिक्षा और राजनैतिक मसलों पर सटीक टिप्पणियां की है। इसे संपादित कर हम यहां प्रस्तुत रहे हैं।

मैं यह समझा हूं कि गांधी के क्रांतिकारी विचारों को आज के संदर्भ में, ख़ासकर शिक्षा के क्षेत्र में कैसे अपनाया जा सकता है? इस पर सोचने के लिए हम लोग एकत्रित हुए हैं। मैं कई बार सोचता था कि बापू ने 120 या 125 साल जीने की आकांक्षा क्यों रखी थी। उनको अपने शरीर को इतना लम्बा टिकाने में कोई ख़ास मोह नहीं था। फिर 120 या 125 साल जिऊंगा, ऐसा उन्होंने क्यों सोचा था? शायद वे अपने आपको व्यावहारिक आदर्शवादी कहते थे। इसलिए उन्हीं के शब्दों में अगर सोचें तो उनके सपनों का हिन्द स्वराज्य, वे शायद अगर 120 साल के होते तब तक वे पूरा कर पाते, ऐसी उनके मन में उम्मीद रही होगी। उस उम्मीद को 40 साल पहले ही ख़त्म कर दिया गया।

कई वर्षों के बाद हम लोग यहां एकत्रित हुए। अपनी–अपनी दृष्टि से गांधी का काम समझते हैं। उसको कैसे चरितार्थ करना है, ये सोचने के लिए एकत्रित हुए हैं। आपका जो पेपर है वह यह कहता है कि पहले आरंभ हुआ, लगभग दस वर्ष में, इसके बाद उसका कुछ गठन हुआ और फिर कुछ कारणों से वह रुक गया। पर आजकल परिस्थितियां कुछ सुधरी हैं। इसलिए, हम लोग फिर सोचने के लिए यहां एकत्र हुए हैं।

आज एक मौक़ा है, उस मौक़े का फायदा उठाया जाए ऐसा विचार है। मैं कुछ विचार करनेवालों को भी जानता हूं कि यह एक सहयोजन का प्रयत्न है और शायद इसमें हम फंस जाएं। यह भी विचार करने का एक तरीक़ा है। दूसरा विचार यह कि शायद नई धारा का प्रयत्न है कि गांधी की दृष्टि से कुछ सोच रहे हैं, कुछ कर रहे हैं, उनको सहयोजित कर लिया

★ प्रसिद्ध गांधी विचारक हैं। वर्तमान में गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कुलपति हैं।

जाए ताकि बाद में ज़्यादा शिक़ायत वग़ैरह न करें। एक, अन्य तरीक़ा भी सोचने का हो सकता है। इस तरीक़े में इतिहास में, भावी इतिहास के बारे में कुछ अनुमान करने पड़ते हैं। अपनी मर्यादा को ध्यान में रखकर मैं तीसरी दृष्टि से इसके बारे में सोचने का निवेदन करता हूं।

आज की अपने देश की जो नई धारा है, उसको यूटोपिया (आदर्श राज्य या राम राज्य) कहें, स्वर्ग कहें तो इसका केन्द्र वाशिंगटन है। मुझे लगता है कि अमेरिका का ये जो साम्राज्य है, ग्रेट अमेरिकन एम्पायर का, वह बहुत वर्ष तक टिकनेवाला नहीं है। क्योंकि दुनिया के बड़े–बड़े साम्राज्य जो हैं उनकी समाप्ति के इतिहास को देखा जाए तो समाप्ति का इतिहास जिस जगह पहुंचता है क़रीब–क़रीब उस जगह पर अमेरिकन एम्पायर आज पहुंच चुका है।

भोगविलासिता जब चरम सीमा पर पहुंच जाती है तो फिर एम्पायर के ढलते दिन शुरू होते हैं। सम्राट जब अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं तो उनका युद्ध से नाश होता है या दूसरे कारणों से नाश होता है। जब शोषण व्यापक रूप से होने लगता है तब भी हम लोग, इतना ही नहीं दुनिया के बहुत सारे लोग, इस बादवाली स्थिति पर या तो विचार नहीं करते हैं या करना नहीं चाहते। इस कारण उन्हें उसके बादवाली स्थिति के लिए तैयार होना है, यही हमारा काम है। दिक़्क़त इस बात की है कि इस काम के लिए हम लोग तैयार नहीं होते। इसलिए आज की परिस्थिति का लाभ उठाकर, हम क्या कर सकेंगे, इतना ही सोचकर संतुष्ट हो जाते हैं।

अब कम–से–कम मुझे उससे संतोष नहीं है। इसलिए, मैं ज़रूर चाहूंगा कि उस परिस्थिति के लिए तैयारी करने की नज़र से हमको देखना होगा। इसके लिए ज़रूरी नहीं है कि ऐसी परिस्थिति आए तब तक हम ज़िन्दा रहें, यह कतई ज़रूरी नहीं। लेकिन तब तक यह प्रयोग ज़िन्दा रहे और उस परिस्थिति के योग्य हो यह ज़रूरी है, उसके लिए हम लोग तैयारी भी करें तो शायद इस चर्चा में उपयोगी होगा।

इस गोष्ठी में भागीदारी करनेवाले मुख्य चार तत्त्व दिखाई देते हैं। इनमें से तीन यहां मौजूद हैं, चौथा अदृश्य है। एक भागीदार सरकार है, केन्द्रीय सरकार, पार्लियामेंट जिसने प्रस्तावित किया है। दरअसल यह प्रस्ताव पुरानी फ़ाइलों में से निकला है और अभी पुनर्जीवित होने की कोशिश कर रहा है। ऐसा मालूम होता है कि उस आदेश का लाभ लेकर हम आगे चलने का प्रयत्न कर सकते हैं। इसकी भी सरकार को आवश्यकता महसूस हुई है, जो बीच में कुछ समय तक कुछ सरकारों को पता नहीं होता था। इस समय इस सरकार को मालूम है। इसके अपने–अपने कारण हो सकते हैं। बहुत सारा ध्यान नगरों की तरफ़ दिया जाता है। इसलिए, थोड़ा गांव की तरफ़ भी हम ध्यान दें और चुनावों पर भी इसका असर होता है।

कुछ लोगों का यह अनुमान ज़रूर है कि आनेवाले वर्षों में इस देश की जनता नगरों में रहेगी। तब इन गांवों का इतना महत्त्व नहीं होगा जितना आज है। अगर ज़्यादा आबादी नगरों में रहनेवाली हो जाएगी तो फिर गांव की क्या चिंता करना वो अपनी मौत मरे, यह सोच भी हो सकता है। लेकिन आज वह स्थिति नहीं है। इसलिए, वास्तविकता से देखनेवाले लोगों की सोच है कि इस तरफ़ भी कुछ ध्यान देना पड़ेगा।

एनसीआरआई की गवर्निंग बॉडी इस मसले पर सोचने के लिए हम लोगों को निमंत्रित करती है। शायद उनके मन में यह विचार है कि यह काफ़ी अच्छा अवसर है कि हम इस काम को पुनर्जीवित कर सकते हैं। एक आशा की तो नज़र से देखनेवाली गवर्निंग बॉडी और दूसरे उनके भागीदार हैं। सहयोग में हम जैसे गांधीयन संस्था के लोग हैं जो अपने कामों में अक्सर गांधी के शब्दों का भी प्रयोग करते हैं, इस्तेमाल भी करते हैं। गांधीवादी लोगों की स्थिति काफ़ी ढुलमुल है और वे देख रहे हैं कि इस गांधी के

विचार से थोड़ा ऑक्सीजन मिल सकती है कि नहीं। थोड़े मज़बूत हम लोग हो सकते हैं कि नहीं। यह तीसरा एक्टर है। मैंने आरंभ में कहा कि एक चौथा एक्टर या भागीदार है या होना चाहिए वह है जनता, जो यहां मौजूद नहीं है।

गांधी का कोई कार्यक्रम जनता के बिना हो ही नहीं सकता। हम लोग कोई जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाले नहीं हैं। चुने हुए प्रतिनिधियों की मैं बात नहीं कर रहा हूं, लेकिन सचमुच में जैसे कि आम जनता मानती है, जिसके कारण गांधी को क्रांतिकारी जो कहा गया है, वह चरितार्थ होगा। तो जनता ही चरितार्थ कर सकती है न गांधीयन इंस्टीट्यूट कर सकता है, न ये गवर्निंग बॉडी और न ही सरकार कर सकती है। इसलिए इस चौथे एक्टर या भागीदार की मदद हम कैसे कर सकते हैं, यह सोचना इस गोष्ठी का काम होना चाहिए।

आज की परिस्थिति में हमारी स्थिति अलग है। बापू जब गुज़रे तो देश विभाजित हो चुका था और उसी के बाद उनके प्राण गए। आज देश विभाजित हो गया है, ऐसा मैं नहीं कहूंगा, लेकिन हो रहा है। क्योंकि यहां जो शब्द इस्तेमाल किए गए हैं अरबन और रूरल। लेकिन शहरों में भी विभाजित हो चुके हैं और गांवों में भी बंटते जा रहे हैं। और यह ऐसा विभाजन है जिसमें कुछ लोगों को लगता है कि संख्या बहुत बड़ी है। जिन लोगों को लगता है कि अब कितने उत्तम दिन आए हैं, जितने पिछले साठ वर्षों में कभी नहीं आए थे। विशेषकर, आज़ादी की साठवीं जयंती के उपलक्ष्य में लोग जो लिखते हैं उसको अगर देखा–परखा जाए तो ऐसा लगता है कि ऐसे दिन साठ वर्ष में कभी नहीं आए। इतने अच्छे दिन अब आए हुए हैं। ऐसा यदि गुर्जर की भाषा में कहें तो इसके लिए दो शब्दों का इस्तेमाल करता हूं। पहले प्रकार को मैं कहता हूं ''फावेला'', दूसरे को कहता हूं ''रहीगेला''। जिनको परिस्थिति का लाभ मिल चुका है वे एक प्रकार के और जिनको परिस्थिति का लाभ शायद चाहिए तो सही लेकिन मिल नहीं पाया, वे दूसरी प्रकार के हैं। इस प्रकार का एक काफ़ी बड़ा विभाजन इस देश में दिखाई देता है। और वह विभाजन और बढ़ता जा रहा दिखाई पड़ रहा है।

इस परिस्थिति की वास्तविकता को आंकड़ों के माध्यम से विश्लेषित करके कुछ बता सकेंगे। जिनको परिस्थिति का लाभ मिला है, वे बढ़ रहे हैं और जो पीछे रह गए हैं वे कम हैं। आंकड़ों के अनुसार ग़रीबी की रेखा के नीचे रहनेवालों का प्रतिशत कम हुआ है। लेकिन ग़रीबी की रेखा से नीचे रहनेवालों की संख्या कम नहीं हुई है। स्थिति यह है कि ऐसे लोगों की संख्या बहुत ज़्यादा बढ़ी है।

तो इस स्थिति में बापू अगर होते तो शायद चिंता पहले उनकी करते जो कि ग़रीबी की रेखा के नीचे जी रहे हैं न कि दूसरे वर्ग की। इस दृष्टि से हमें आगे सोचना होगा। इसका काफ़ी ग्लोरीफिकेशन भी होता है। इसकी एक अनिवार्य शर्त है, जो रियो–डी–जेनेरो में प्रेसीडेंट बुश ने बताई थी। उत्तर और दक्षिण के देशों के बीच बातचीत जब हुई तो उन्होंने इसकी एक शर्त बताई थी आपको पर्यावरण के बारे में जो सोचना हो कहिए, भविष्य के बारे में जो सोचना हो कहिए। लेकिन, अवर लाइफ स्टाइल इज नॉन नेगोशेबल, ये आज के प्रेसीडेंट के वाक्य हैं। अगर अवर लाइफ स्टाइल इज नॉन नेगोशेबल, ये शर्त हो गई तो इस परिस्थिति के साथ जो दूसरा वर्ग है वह किसी भी प्रकार का समझौता नहीं कर सकेगा और यह समझना चाहिए की प्रेसीडेंट बुश सीनियर की ही लाइफ स्टाइल नहीं है। इस लाइफ स्टाइल के लोग हर देश में हैं। हम सब लोग भी उसी लाइफ स्टाइल के ही एक अंग हैं। इसलिए, केवल उनकी रहे और हमारी लाइफ स्टाइल नेगोशेबल होगी और हम आगे की परिस्थिति को पर्यावरण और भविष्य की दृष्टि से सुधारेंगे, अपने बच्चे और परपोतों की दृष्टि से

सुधारेंगे। ये अगर कहेंगे तो संभव नहीं है, इतना सोचना पड़ेगा। ये हमारे सामने बहुत बड़ी चुनौती है। और उस चुनौती को मैं सकारात्मक रूप से देखता हूं। तो उस चुनौती का सामना करके जहां ये इस प्रकार का असंतुलित जगत् बदलना है या बदला होगा या बदल रहा हो, उस लालच की ओर जाने वाले जगत् पर पहुंचने के लिए हमें क्या करना है, ये नई तालीम के सामने आज चुनौती है और मैं इसे असंतुलित मानता हूं। वह कुछ लोग और बाक़ी की दुनिया के बीच का असंतुलन ही है। और मनुष्य और पर्यावरण के बीच का असंतुलन भी इसमें शामिल है।

जाकिर हुसैन ने जिस नई तालीम की बात कही थी उसमें उन्होंने व्यक्ति, सृष्टि और समष्टि अर्थात् व्यक्ति और समष्टि में समाज व्यक्तिगत विकास, समाज का विकास और प्रकृति के साथ का विकास। ये तीनों बिंदु उन्होंने साथ कहे थे। तो उस दृष्टि से अगर हम देखें तो एक संतुलन के बारे में भी हमें सोचना होगा। इस चुनौती का सामना करने के लिए शायद सबसे पहली ज़रूरत होगी इस परिस्थिति के बारे में जितना हो सके, विशाल स्तर पर प्रबोधन करना होगा। पॉउलो फ्रेरे की भाषा में कहूं तो कनसोशिएशन यानीकि सहयोग करना पड़ेगा। बिना कनसोशिएशन के इस परिस्थिति में परिवर्तन नहीं होगा । दूसरा संगठन करना होगा और वह संगठन जो गांधी सोच रहा था उस ढंग से नीचे से ऊपर की करनी पड़ेगी न कि ऊपर से कोई 5, 10, 15, 50 करोड़ रुपए मिल जाए और उस रुपए से हम कोई परिवर्तन कर डालेंगे। शायद हमको नीचे से उसके लिए एक नेटवर्क खड़ा करना पड़ेगा। ये संगठन की दूसरी शर्त है।

मुझे लगता है कि परिस्थिति में जो अड़चनें हैं वे सिस्टेमिक भी हो सकती हैं, कुछ व्यक्तिगत भी हो सकती हैं, कुछ राष्ट्रीय स्तर की हो सकती हैं, कुछ विदेशी स्तर और दिलचस्पी की हो सकती हैं। बहुत सारी अड़चनें हैं। उन अड़चनों के सामने संघर्ष करने की भी तैयारी होनी चाहिए। इस विषय में मुझे लगता है कि गांधी के संघर्ष के तरीक़े को आज हम लोग क़रीब–क़रीब भूल गए हैं। सारे संघर्ष गांधी के नाम से चलते हैं। क्योंकि गांधी के संघर्ष की पहली शर्त यह है कि जिसके साथ संघर्ष करते हो उसके साथ का प्रेम नहीं टूटेगा। आजकल हम जो गांधी के नाम से संघर्ष होते देखते हैं उसमें मुझे प्रेम नहीं दिखता। वहां प्रेम से संघर्ष नहीं हो रहा है, क्रोध से संघर्ष हो रहा है। उस तरीक़े की शोध शायद नई तालीम को करने पड़ेगी। ये सामाजिक शोध का वह हिस्सा होगा, जिसे किसी ने विश्वविद्यालय कहा, किसी ने उसे सेंटर कहा है। जो भी लोग मिलकर इसमें अपना दिमाग़ लगाएंगे, उनको इस विषय का पहले तो क्या प्रबोधन हो, दूसरा क्या संगठन हो, किस प्रकार के संघर्ष के तरीक़ों को हमें शामिल करना पड़ेगा। तीसरा हमारा शोध का विषय है और चौथा जो है वह हमें कुछ वैकल्पिक नए नमूने देने पड़ेंगे, जो शायद हममें से बहुत सारे ऐसे लोग हैं जो उसके लिए तत्पर हो जाएंगे। हां, हम अपने एक छोटे से दायरे में थोड़ा एक प्रयोग करेंगे। लेकिन, वह भी अगर हज़ारों की संख्या में होते हैं तो इसका बहुत व्यावहारिक उपयोग होगा, जो समाधान होगा वह परिस्थिति का नहीं अपने मन का होगा।

जो चुनौतियां हैं उसे ज़रा दूसरे ढंग से देखें तो वह बापू ने अपनी मृत्यु से एक दिन पहले कांग्रेस के लिए ही लिखा था उसमें उन्हें क्या करना बाक़ी है, यह करने को कहा है। यह राजनैतिक स्वराज्य आया है, आर्थिक स्वराज्य नहीं आया है। तो क्या हम आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं, क्या हम सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं, क्या हम नैतिक, आध्यात्मिक स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं। आज तो इन चारों क्षेत्रों में जिसमें राजनीति भी है, को बहुत थोड़े लोग बहुत बड़ी जनसंख्या के भविष्य को नियंत्रित कर रहे हैं। जिसे राजनैतिक भाषा में तानाशाही कहा जाता है। दूसरा कोई शब्द उसके लिए है नहीं।

लेकिन इन सारी चीज़ों में वह परिस्थिति हमारे सामने है। उसके लिए हमें इससे निकलने के लिए या उसके बाद आनेवाली परिस्थिति के लिए तैयार होने के लिए हमें शोध करना है। हमें विभिन्न स्तरों के शोध करने पड़ेंगे। ये शोध ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर हर स्तर के करने होंगे। विभिन्न संस्थाओं में किस प्रकार से हमारे काम करने के तरीक़े होंगे उन विषयों को भी चुनने होंगे। मुझे लगता है कि हम गांधी की संस्थावालों ने साझेदारीयुक्त स्वतंत्रता के बहुत कम प्रयोग किए हैं। साझेदारीयुक्त स्वतंत्रता शब्द का जितना प्रयोग होता है उतना व्यवहार में नहीं है। इसको करके देखना पड़ेगा, इसके क्या परिणाम होंगे, इसकी क्या मर्यादाएं हैं? ये भी देखना होगा। इस तरह के हमको सामाजिक क्षेत्र में प्रयोग करने पड़ेंगे। मुझे लगता है कि टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में भी हमको बहुत सारे प्रयोग करने पड़ेंगे क्योंकि सेमीनारों में इंटरमीडिएट टेक्नोलॉजी, ह्यूमन टेक्नोलॉजी या एप्रोप्रिएट टेक्नोलॉजी शब्द इस्तेमाल होता है उतना प्रत्यक्ष क्षेत्र में कहीं दिखता नहीं। तो वह जब दिखेगा तो हमारी कुछ तैयारी होगी। बहुत सारे उसके लिए हमको प्रयोग करने पड़ेंगे। हमारे साधनों को काफ़ी बदलना पड़ेगा और काफ़ी बदलने के उदाहरण अगर दूं तो खादी का आता है। खादीवाला हूं इसलिए खादी का उदाहरण देता हूं। नरेन्द्र भाई भी उसे अधिक पसंद करेंगे कि मिलों में जिस प्रकार से पुनिया बनाते हैं उसी प्रकार हम अपनी कताई के लिए पुनिया बना दें तो छोटी मिल बना दें तो वह एप्रोप्रिएट टेक्नोलॉजी में नहीं आएगी। उसको बदलना पड़ेगा। यह मैं एक उदाहरण के लिए कहता हूं। लेकिन उस ढंग के टेक्नोलॉजी के भी नए प्रयोग करना, समाजशास्त्र के भी नए प्रयोग करना, ये शायद इस संस्था का एक काम भविष्य के लिए हो सकता है। ऐसा मुझे लगता है।

ऊर्जा के विषय में बहुत सारे प्रयोग करने होंगे। काम करने की अर्थात् इंसान के परस्पर संबंधों के रिश्ते, उनकी सक्रियता के बारे में हमें बहुत सारे प्रयोग करने पड़ेंगे। हमें प्रयोग करनेवाले व्यक्ति ढूंढ़ने हैं। वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखते हुए इस प्रयोग को कुछ आगे बढ़ा सकें, इस प्रकार की कोशिशें करनी होंगी। उन व्यक्तियों के विषय में हमको सोचना पड़ेगा। संस्थाएं जो हैं उनके विषय में भी उसी ढंग से सोचना होगा।

मुझे आपके इन पर्चों में एक वाक्य बहुत दिलचस्प लगा "स्वायत्त और पूर्ण रूप से सरकार के द्वारा अनुदानित।" मैं इन मसलों को थोड़ा और बारीक़ी से समझना चाहूंगा कि क्या कोई संस्था पूर्ण रूप से सरकारी अनुदान पर मगर स्वायत्त हो सकती है? इस पर सोचने के लिए आप लोगों के सामने यह प्रश्न मैं रखना चाहूंगा। क्योंकि अगर उतना करके हम आगे चलेंगे तो दिक़्क़तें आ सकती हैं।

नई तालीम के मामले में क़रीब–क़रीब हर प्रदेश में हुआ है कि जहां तक सरकार की ओर से अनुकूलता है वहां तक नई तालीम चलेगी और सरकार बदल गई यानी एक आदमी भी यदि बदल जाए, एक मंत्री भी अगर बदल जाए तो भी सारा काम ठप्प हो सकता है। कुल मिलकार यह स्थिति है। अगर हम इतने वर्षों के अनुभवों से ये भी नहीं सीखेंगे तब तो हम आगे नहीं बढ़ पाएंगे। इस समय का थोड़ा आकलन करने का मन है। इसके अलावा और कुछ नहीं है, ऐसा समझना चाहिए।

इस विषय में मैं सिर्फ़ चेतावनी ही देना चाहता हूं। प्रयोग करने में हमारी बहुत रुचि है। मेरी स्थिति तो यह है कि 80 साल के बाद में मुझे संस्थाओं में जोड़ा जा रहा है। संस्थाओं को यह कर रहा हूं कि मैंने एक मिशन माना है कि गांधी के विचारों को गांधी की कथाओं द्वारा कहना। अब सवाल यह है कि इस मिशन का कितना काम करवाना चाहते हैं, कितनी नई–नई ज़िम्मेदारियां मुझे देना चाहते हैं।

रपट

हिन्द स्वराज्य के सौ बरस

★ महेश नारायण दीक्षित ★★ विक्रमसिंह अमरावत

गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद एवं केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय सारनाथ के संयुक्त तत्त्वावधान में ''हिन्द स्वराज्य एवं बौद्ध दर्शन'' विषय पर दिनांक 02 अप्रैल से 11 अप्रैल 2009 तक दस दिवसीय कार्य शिविर का आयोजन सारनाथ में किया गया। यह कार्य शिविर हिन्द स्वराज्य के शताब्दी वर्ष में किए जा रहे विविध कार्यक्रमों की शृंखला की एक कड़ी था। कार्य शिविर में देशभर के लगभग 70 प्रतिभागियों एवं 15 प्रशिक्षक वक्ताओं ने भाग लिया। प्रतिभागियों में 25 तिब्बती भाई–बहनों ने भागीदारी की। इस कार्य शिविर में गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, उड़ीसा, बिहार, उ.प्र., उत्तराखण्ड, दिल्ली, असम, मणिपुर, म.प्र., अरुणाचल प्रदेश एवं दक्षिण भारत के विभिन्न राज्यों से आए लगभग 60 प्रतिभागियों ने भागीदारी की।

उद्घाटन सत्र में नारायणभाई देसाई (कुलपति गूजरात विद्यापीठ) समदोंग रिनपोछे, (प्रधानमंत्री निर्वासित तिब्बतन सरकार), सुदर्शन आयंगार (कुलनायक गूजरात विद्यापीठ), समटेंग, (कुलपति केन्द्रीय तिब्बती अध्ययन विश्वविद्यालय) एवं नरेश माथुर उपस्थित रहे।

समदोंग रिनपोछे ने बौद्धदर्शन की व्याख्या गांधी दर्शन एवं विशेष रूप से हिन्द स्वराज्य के संदर्भ में की।

रिनपोछे ने अपने व्याख्यानों में गांधीदर्शन एवं बौद्धदर्शन में समानता को तो प्रधानता दी ही साथ ही यह भी प्रतिपादित किया कि तिब्बत में स्वराज्य आ सकता है तो उसकी चाबी हिन्द स्वराज्य और गांधी विचार में ही निहित है। हिन्द स्वराज्य एवं बौद्धदर्शन के मूल में शाश्वत सत्य एवं कल्याण की स्थापना का ध्येय है। हिन्द स्वराज्य समाजोन्मुख होने के कारण अपने आपमें व्यावहारिक है।

मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए रिनपोछे ने त्रिपिटक के बाद हिन्द स्वराज्य को अब तक लिखे गए ग्रन्थों में सर्वोत्कृष्ट कृति बताया।

नारायणभाई देसाई ने कहा कि गांधीवाद में सबसे कम यदि किसी की श्रद्धा थी तो वह गांधीजी को थी। इस देश में जब तक ग़रीबी, असमानता रहेगी, विश्व में जब तक अशान्ति रहेगी तब तक गांधी प्रासंगिक हैं। जो लोग गांधी की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाते हैं उन्हें सर्वप्रथम स्वयं से ही प्रश्न करना चाहिए कि मैं स्वयं गांधी विचार के लिए कितना प्रासंगिक हूं? गांधीजी के बुनियादी विचारों को उन्होंने दो भागों में विभाजित किया पहला तत्त्व और दूसरा तन्त्र। तत्त्व वह जो देशातीत एवं कालातीत हो जो नित्य हो। इसमें उन्होंने सत्य, अहिंसा, साधन–शुद्धि, कर्तव्य–अधिकार, तर्क एवं श्रद्धा को शामिल किया। ये सभी शाश्वत हैं एवं इनकी प्रासंगिकता किसी भी समय, किसी भी स्थान पर सदा रहेगी। अतः ये मूल तत्त्व है। दूसरा तन्त्र जिसमें वे विचार या संकल्पनाएं हैं जो प्रसंगोचित हों एवं सदा आवश्यक ना हों जैसे अस्पृश्यता निवारण (मंगोलिया या साईबेरिया में खादी के

★ गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद में सहायक प्राध्यापक। ★★ नई तालीम प्रोजेक्ट, गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद।

स्थान पर कुछ और होगा) आदि। तंत्र की दिशा सदा तत्त्व की ओर होनी चाहिए। नारायणभाई देसाई ने सत्य को परिभाषित करते हुए बताया कि ''जो सोचो वो बोलो और जो बोलो वो करो'' यही सत्य है। इसका श्रेष्ठ उदाहरण नई तालीम है, यथा सम्पूर्ण व्यक्तित्व का एकीकरण है। गांधीजी के एकादशव्रत का मूल तत्त्व सत्य है। असत्य का मूल कारण भय, महत्त्वाकांक्षा एवं लोभ है। इनके दूर होते ही सत्य ही निकट आ जाता है। तर्क एवं श्रद्धा के विषय में कहा कि ये एक दूसरे के सहायक हैं। श्रद्धा पांच प्रकार की होती है– स्वयं पर, साथी पर (जो मुझमें है, वो उसमें भी है) कारण की उत्तमता पर, साधन पर एवं अन्ततः परम लक्ष्य के लिए श्रद्धा। आपने साधन शुद्धि के विषय में कहा कि तुम जिस लक्ष्य पर जाना चाहते हो, तुम्हारा मार्ग भी वही होगा। इसके तीन भाग हैं– साधक, साधन एवं सिद्धि जिसमें व्यक्ति को चरित्र, समूह का साधन एवं कल्याणकारी उद्देश्य क्रमशः शामिल हैं। साधन शुद्धि के तीन उपकरण बताए– विचार की सफ़ाई, श्रद्धा की दृढ़ता एवं सातत्यता। सातत्यता के लिए उन्होंने उदाहरण दिया कि एक बिल्ली अपने पदचाप से हावड़ा ब्रिज को तोड़ दे इतनी सातत्यता। सातत्यता की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि साधन अपने हाथ में हैं, सिद्धि अपने हाथ में नहीं इसलिए साधन शुद्धि ज़रूरी है। सर्वदा साधन लक्ष्य को प्रभावित करते हैं। समस्त प्रयासों का परिणाम हमेशा लक्ष्य होना चाहिए। लक्ष्य सदा व्यापक होना चाहिए नहीं तो उसमें स्वार्थपरकता के गुण आ जाते हैं और जो व्यक्ति का गुण है वही समाज का मूल्य है। अहिंसा के विषय में कहा कि हिंसा हमारे व्यक्तित्व एवं चरित्र का विनाश करती है, हिंसा सदा प्रतिहिंसा को जन्म देती है, हिंसा कभी भी आम आदमी का साधन नहीं हो सकती। परिवर्तन के हमेशा दो कारण होते हैं डर या लोभ। किन्तु गांधीजी ने इसका नया उपकरण दिया अहिंसा। अहिंसा एवं सत्य को साथ में रखकर सत्याग्रह के विचार दिया। इसमें तीन महत्त्वपूर्ण शक्तियां कार्य करती हैं– सत्य की शक्ति, समर्पण की शक्ति एवं आत्मा की शक्ति। सत्याग्रह एक जीवन दर्शन है, जीवन जीने की कला है। सत्याग्रह द्वारा ही समाज क्रान्ति संभव है एवं सत्याग्रह का लिए आवश्यक चित्त शुद्धि हो। अतः चित्त शुद्धि का अंतिम परिणाम समाज क्रांति हो और समाज क्रांति का साधन चित्त शुद्धि हो। देसाई ने सत्याग्रह के 16 तत्त्वों की चर्चा की, जो कि सत्याग्रह के अनिवार्य तत्त्व हैं–

1. सर्वप्रथम किसी भी अन्याय के प्रति जागरूकता अत्यावश्यक है। परन्तु इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं अपितु इसका हेतु सामाजिक कल्याण होना चाहिए।
2. असंतोष की अभिव्यक्ति द्वारा अन्याय के विरुद्ध हम अपना पहला क़दम रखते हैं, लेकिन स्मरण रहे कि यह अतिशयोक्तिपूर्ण ना हो एवं इसमें मधुरता नहीं भूलना चाहिए।
3. इसके पश्चात् विरोधी के पास विश्वासपूर्वक जाकर इसके समक्ष अपनी बात को इस विश्वास से रखना कि विरोधी में भी मानवता के गुण विद्यमान हैं एवं स्वयं की सत्यता भी कसौटी पर कस लेनी चाहिए।
4. सत्य को अलग–अलग तरीक़े से बताना भी एक महत्त्वपूर्ण क़दम है। यदि संभव हो तो विरोधी की ही किसी बात का प्रमाण देकर समझाना चाहिए।
5. प्रतिपक्षी के विवेक को जगाना भी आवश्यक है, क्योंकि उसके बग़ैर सत्य के प्रति उसका रुख़ सकारात्मक नहीं होगा और उसका निर्णय

भी सर्वकल्याणकारी नहीं होगा।

6. मूल विषयवस्तु के बारे में आमजन का निरन्तर प्रशिक्षण आवश्यक है। इससे जन–जागरण होता है, जनता का नैतिक समर्थन मिलता है और सर्वकल्याण के विचार की निरन्तर पुष्टि होती रहती है।

7. सीधी कार्यवाही सत्याग्रह का एक महत्त्वपूर्ण भाग है। लेकिन यह स्मरण रहे कि संघर्ष प्रणाली के विरुद्ध हो, व्यक्ति के विरुद्ध नहीं, और प्रणाली के विरुद्ध संघर्ष में किसी भी प्रकार की दया की आवश्यकता नहीं।

8. सीधी कार्यवाही की शुरुआत के पश्चात् यह सुनिश्चित हो जाता है कि अब आप आगे ही बढ़नेवाले हैं, उसमें गहरा जाने की क्षमता का होना अत्यावश्यक है।

9. स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहन करने की ताक़त का होना सत्याग्रह की सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त है। देसाई ने आचार्य जे.पी. भंसाली के सत्याग्रह का उदाहरण देकर बताया कि आपका लक्ष्य बड़ा होना चाहिए लेकिन मांग छोटी और विशिष्ट जिससे लक्ष्य तक धीरे–धीरे और सटीक रूप से आगे बढ़ा जा सके।

10. इन सबके साथ सत्याग्रहियों में एकता को बनाए रखना भी आवश्यक है, अन्यथा फूट पड़ने से सत्याग्रह कमज़ोर हो लक्ष्य से भटक सकता है।

11. इसके अतिरिक्त सीधी कार्यवाही के साथ प्रतिपक्ष से संवाद निरन्तर जारी रहना चाहिए, जिससे कि विषय किसी भी समय गौण ना होने पाए।

12. संघर्ष के साथ–साथ रचनात्मक कार्य भी चलता रहना चाहिए। इससे संघर्ष को तो बल मिलता ही है, संघर्षोपरान्त सकारात्मक व्यवस्थापन की राह इससे आसान हो जाती है।

13. रचनात्मक कार्यों के लिए अलग–अलग स्थानों पर केन्द्रों की स्थापना कर उनका प्रसार भी साथ–साथ करना आवश्यक है। गुजरात के जुगतराम दवे कहा करते हैं कि ''मैं तो रचनात्मक कार्य ही करता था, सत्याग्रह तो मेरे दरवाज़े पर आ जाता था।''

14. इन सबके साथ बातचीत द्वारा निरन्तर समझौते के प्रयास भी जारी रहने चाहिए। इनमें आपको मुद्दों को दो भागों में बांटकर देखना होगा। मूल मुद्दे और सहायक मांगें। इनमें मूल मुद्दों पर टिके रहना और सहायक के विषय में नरम रुख़ अपनाया जा सकता है।

15. न्याय को स्वीकार करना अत्यावश्यक है। परिस्थिति में न्याय की स्थापना की जानी चाहिए।

16. सत्याग्रह का अंतिम पड़ाव विजय है, लेकिन यहां यदि एक पक्षीय विजय हुई है तो यह सत्याग्रह सफल नहीं माना जा सकता, क्योंकि विजय दोनों ही पक्षों की होनी चाहिए। सफलता का सकारात्मक स्वरूप सबको मालूम होना चाहिए।

गूजरात विद्यापीठ के कुलनायक सुदर्शन आयंगार ने सत्य के साथ प्रयोग, एवं गांधीजी के आर्थिक विचारों की विस्तार से चर्चा की। गांधीजी की आत्मकथा पर व्याख्यान देते हुए उन्होंने कहा कि इस कथा का नायक कोई महात्मा नहीं है, वह तो एक साधारण सा मोहन है। यह मोहन एक आम आदमी की तरह ही सोचता है, जीता है, बा से यदि

कुछ भिन्नता है तो उसके प्रयोगों को लेकर एवं उनसे उसके सीखने को लेकर है। मोहन ने तीन स्तरों पर प्रयोग किए। यद्यपि ये प्रयोग वो नहीं हैं जो विज्ञान की प्रयोगशालाओं में किए जाते हैं बल्कि ये वो प्रयोग थे जो एक आम आदमी के जीवन में घटित होनेवाली घटनाओं के रूप में सम्पन्न होते हैं। मोहन इन घटनाओं को प्रयोग की दृष्टि से देखता था। उसने जिन तीन स्तर पर प्रयोग किए वे हैं, प्रथम व्यक्तिगत स्तर पर, द्वितीय पारिवारिक या सामुदायिक स्तर पर और तृतीय व्यापक या राष्ट्र स्तर पर।

आयंगार ने अपना अंतिम व्याख्यान गांधीजी के आर्थिक दर्शन पर दिया, जिसमें उन्होंने सर्वप्रथम तथाकथित आर्थिक विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को बताया एवं कहा कि इसका आरम्भ यूरोपीय पुनर्जागरण से हुआ। जहां भौतिकवादी विचारधारा की स्थापना हुई। उन्होंने फ्रांसिस बेकन के उस वक्तव्य का उदाहरण दिया जिसमें फ्रांसिस बेकन ने कहा कि, ''हमें खुली घूमती हुई प्रकृति को बांधकर ग़ुलाम बनाना है, और यह हमारी भौतिक सुविधाओं के लिए करना है।'' उन्होंने कहा कि हमारी कृषि सभ्यता कोई दस हज़ार वर्ष से अधिक पुरानी नहीं है। आधुनिक सभ्यता का इतिहास तो मात्र 300–500 वर्ष पुराना ही है। यह पर्यावरण संकट 350 वर्ष से ही क्यों शुरू हुआ। इसकी शुरुआत तब से हुई जब से अर्थशास्त्र को विज्ञान बनाने की होड़ लगी। इससे मूल्यविहीन अर्थशास्त्र का जन्म हुआ, क्योंकि मूल्य पूर्वाग्रह हैं और यदि अर्थशास्त्र को विज्ञान बनाना है तो पूर्वाग्रह से मुक्त करना होगा और इस प्रकार पश्चिमी समाज का मानव मूल्यनिरपेक्षता का दावा करके मूल्यहीनता में घुस गया। तभी से मनुष्य ने ''प्रोडक्शन बॉयो मास'' से नाता तोड़कर ''मास प्रोडक्शन'' का पल्लू पकड़ा। पहले कृषि में जैविक ऊर्जा का उपयोग होता था अब मशीनी ऊर्जा का। पहले हमारी सॉईल ईकोनामी थी और अब ऑईल ईकोनामी हो गई। इस प्रकार भौतिकवादी एवं उपभोगवादी संस्कृति की मूल जड़ को समझ कर गांधीजी ने इसका हल बताया, जिसका उदाहरण स्वराज्य में देखने को मिलता है। उन्होंने कहा कि ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त गांधीजी के आर्थिक दर्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिसमें उनके विचार के मूल तत्त्व अहिंसा, करुणा, मानवता अन्तर्निहित हैं। यद्यपि गांधीजी आगामी पर्यावरण संकट को नहीं देख पाए थे तथापि नैतिक आचरण की बात करते हुए उन्होंने उसके समस्या पूर्व समाधान की बात तो की ही थी।

हिन्द स्वराज्य में गांधीजी ने मानव की उपभोगवादी प्रवृत्तियों को समस्या का मूल कारण माना है, वहीं ईशावास्योपनिषद् 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' जैसे मंत्रों द्वारा त्यागपूर्वक उपभोग करने की बात करता है। यह मानव को न केवल त्याग अपितु उससे संबंध मानव हितकारी, करुणा, प्रेम, अपरिग्रह एवं बन्धुत्व जैसे मूल्यों का भी सिंचन करने में सहायक है। गांधीजी स्वयं गीता एवं ईशावास्योपनिषद् को अमूल्य ग्रंथ मानते थे।

उदयपुर में शिक्षान्तर आन्दोलन से जुड़े मनीष जैन ने हिन्द स्वराज्य की वर्तमान प्रासंगिकता विषय पर अपना व्याख्यान दिया। मनीष ने सर्वप्रथम स्वयं के अनुभवों को आधार बनाकर हिन्द स्वराज्य की प्रासंगिकता को बताया एवं तत्पश्चात् वर्तमान व्यवस्था में प्रचलित विकास को तथाकथित परिभाषाओं के पीछे छुपे हुए सत्य को विभिन्न तथ्यों द्वारा उजागर करते हुए असल तस्वीर को पेश किया। मनीष ने कहा कि हिन्द स्वराज्य में उन सभी प्रश्नों के उत्तर हैं, जो वर्तमान व्यवस्था के कारण मानवता के समक्ष उपस्थित हो गए हैं। अतः यह कृति सिर्फ़ भारतीयों के लिए ही हो, ऐसा नहीं है। यह एक दिशासूचक

यंत्र की तरह है, जो सबको दिशा दिखाता है। हिन्द स्वराज्य की विषयवस्तु एवं उसमें उठाए मुद्दों के लिए उन्होंने कहा कि हिन्द स्वराज्य कविता की तरह पढ़ना चाहिये। इसमें जिस डॉक्टर, वकील एवं रेलवे का विरोध किया गया है, वो तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य के मज़बूत स्तम्भ थे। मनीष ने कहा कि वर्तमान में मानव को संसाधन माना जा रहा है, जबकि यह ग़लत है, साथ ही विकास को जी.एन.पी. से जोड़कर देखा जाता है जो विशुद्ध रूप से उपभोगवाद को बढ़ावा देता है। यहां संस्थागत प्रणाली के दबाव में प्राकृतिक या वास्तविक विकास अवरुद्ध हो रहा है। इससे एक निश्चित वर्ग ऐसा बन रहा है जो वह तय करता है कि क्या होना चाहिये, क्या करना है। लेकिन इस स्थिति को तोड़ना होगा अपने मस्तिष्क को डीकोलोनाईज करना होगा। इसके लिए हिन्द स्वराज्य में विकल्प की परिकल्पना भी मिलती है। आज से सौ वर्ष पूर्व ही गांधीजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से इन समस्याओं को विकराल स्वरूप में देख लिया था और इसका हल बता दिया था। आवश्यकता है उसे समझकर अपनाने की।

स्वराज्य पीठ से जुड़े राजीव वोरा ने हिन्द स्वराज्य की विषयवस्तु पर व्याख्यान दिया। वोरा ने कहा कि 1909 में लिखी गई यह पुस्तक तब के संदर्भ में जितनी प्रांसगिक थी, उससे कहीं ज़्यादा आज प्रासंगिक है। आज निरन्तर प्रयासों के बावजूद समस्याएं बढ़ रही है। एक तरफ़ भौतिक उन्नति हो रही है और दूसरी तरफ़ आध्यात्मिक अवनति। इन सौ वर्षों में समस्याओं का मात्र रूपान्तर, कालान्तर, देशान्तर एवं वेशान्तर हुआ है, जबकि उनका मूल स्वरूप तो वही है। सभ्यता की जिस परिभाषा पर हम कार्य कर रहे हैं, वह हमें भौतिक सुविधाएं एवं उपभोगतावाद की ओर ले जा रही है, जिसके परिणामस्वरूप हमारा समाज बहुत से भागों में बंटता जा रहा है, तथा जिसमें मानव स्वयं को समुदाय के बीच असहाय एवं शोषित महसूस कर रहा है। विकास की तथाकथित इस प्रक्रिया में वह अपनी मूल आवश्यकता, स्वाधीनता एवं न्याय को प्राप्त करने में असमर्थ है।

उन समस्त समस्याओं को गांधीजी ने सौ वर्ष पूर्व ही देख लिया था और उन्होंने अपने स्वराज्य के विषय में परिकल्पना पस्तुत की थी जिसकी आधार भूमि के रूप में हम हिन्द स्वराज्य को देख सकते हैं। न्याय एवं स्वतंत्रता को एक रूप में देनेवाली व्यवस्था का नाम ही स्वराज्य है। हिन्द स्वराज्य में लिखे एक–एक शब्द मानव की चेतना को जागृत कर स्वाधीनता एवं न्याय के बीच संतुलन स्थापित करते हैं। यदि उसमें ''शैतानी सभ्यता'' शब्द का प्रयोग है तो वह विशेषण न होकर मूलतः संज्ञा ही है, क्योंकि पश्चिमी सभ्यता में सत्य को इन्द्रिय ग्राह्य जनित बताया है अर्थात् चार पुरुषार्थों में धर्म एवं मोक्ष का स्थान गौण हो जाता है। ऐसी सभ्यता में स्वतंत्रता के पैरोकारों को न्याय को समाप्त कर दिया एवं समाज की विविधता को पारस्परिक निर्भरता के रूप में ना देख उसे एक दूसरे का विरोधी बना दिया। श्री वोरा ने मैकाले, हाब्स आदि की तुलना शुक्राचार्य से की। उन्होंने कहा कि ये लोग अच्छी तरह से जानते थे कि सभ्यता कैसे निर्मित की जा सकती है एवं कैसे तोड़ी जा सकती है। गांधीजी ने इसके माध्यम से दुनिया के समक्ष सत्य प्रस्तुत किया। इस प्रकार यह कृति अपने आपमें सम्पूर्ण है।

होशंगाबाद से आए सुनील कुमार ने वैश्विक आर्थिक संकट विषय पर अपना व्याख्यान दिया। सुनील ने बताया कि वर्तमान में चार तरह के संकट दुनिया में गुज़र रहे हैं– वित्तीय, भोजन, पर्यावरण एवं आतंकवाद या हिंसा। और ये चारों आधुनिक सभ्यता के परिणाम हैं, जिसे गांधीजी ने हिन्द स्वराज्य में सौ

वर्ष पूर्व ही बता दिया था। इन्होंने मूलतः वित्तीय संकट पर चर्चा की और बताया कि इस संकट का मूल कारण पूंजीवाद में बढ़ते बाज़ार और मुनाफ़े की प्रवृत्ति है। हर चीज़ बाज़ार पर छोड़ देने की बात करनेवालों को सबसे अधिक झटका लगा है। दुनिया के ग़रीब देश निर्यात आधारित विकास के लिए विकसित देशों को सस्ता निर्यात कर रहे हें एवं महंगा आयात कर रहे हैं। इससे उनके संसाधन निरन्तर कम हो रहे हैं। दक्षिण अमेरिका के देश जितना आयात करते हैं उससे छह गुणा ज़्यादा निर्यात करते हैं और यूरोप के विकसित देश जितना निर्यात करते हैं उससे चार गुणा ज़्यादा आयात करते हैं। पूरी दुनिया का श्रम यूरोप के विकसित देशों की जनता की सेवा में लगा है, यही उनकी समृद्धि का सबसे बड़ा कारण है और दुनिया के ग़रीब देश आपस में ही प्रतियोगिता कर रहे हैं, इस कारण वे अपनी क़ीमत कम से कम करते हैं, इससे उन्हें नुक़सान हो रहा है और विकसित राष्ट्रों को फ़ायदा। इससे एक अन्य प्रकार का स्थायी नुक़सान हो रहा है प्रकृति का। साथ ही वर्तमान में दुनिया में जो भी संघर्ष चल रहे हैं, अधिकतर प्राकृतिक संसाधनों को लेकर हो रहे हैं। दो सौ वर्षों से औद्योगीकरण के बाद घूम–फिरकर हमें प्रकृति के पार आना ही पड़ा। हमें नया अर्थशास्त्र लिखना पड़ेगा। जिसमें गांवों के शोषण आधारित शहर नहीं होंगे और उसके लिए गांधी विचार एवं हिन्द स्वराज्य से मदद लेनी होगी।

गांधी शांति प्रतिष्ठान की राधाबहन भट्ट ने स्त्री शक्ति पर व्याख्यान देते हुए कहा कि अहिंसा, सहनशीलता, संवेदना और करुणा ये स्त्री की प्रकृतिप्रदत्त शक्तियां हैं। स्त्री में पोषण एवं सृजन का मूल गुण होता है, इसीलिए इसकी ज़िम्मेदारी भी स्त्री की ही है। वर्तमान में स्त्री और पुरुष को पृथक्–पृथक् कर उनमें भेद के विचार को अधिक प्रबल किया जाता है एवं इनमें एक विरोधाभास निर्मित कर दिया जाता है, लेकिन यह सब नकारात्मक सोच का परिणाम है। स्त्री–पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं। उत्तराखण्ड में चल रहे नदी बचाओ आन्दोलन में महिलाओं की विशिष्ट भूमिका के उदाहरण देते हुए यह स्पष्ट किया कि स्त्री का कार्य आजीविका उत्पादन का नहीं है वरन् समाज में अपने गुणों करुणा, संवेदना, ममता आदि को प्रसारित कर एक अहिंसक समाज की रचना करना है।

वर्तमान में महिलाओं के आरक्षण का मुद्दा यदा–कदा उठाया जाता है। उन्हें जो आरक्षण मिला है वो उनके गुणों का सम्मान करने के कारण नहीं मिला है। यदि महिला सशक्तीकरण की बात करनी है तो सर्वप्रथम उसके गुणों को समझना होगा। आपने विभिन्न आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका से संबंधित अपने अनुभव बताते हुए व्याख्यान की व्यावहारिकता एवं प्रासंगिकता को स्पष्ट किया।

नरेश माथुर ने उद्घाटन सत्र का संचालन किया एवं शिविर के उद्देश्यों से प्रतिभागियों को अवगत कराया।

आगे–आगे देखिए मन का राज्य–हिन्द स्वराज्य

★ वेदव्यास

महात्मा गांधी को जितनी बार पढ़ता हूं तो मुझे लगता है कि स्वतंत्रता के बाद आए देष के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिवर्तन और जीवनषैली ने 'हिन्द स्वराज्य' की उनकी अवधारणा को ही सिरे से हाषिए पर धकेल दिया है। यह 'हिन्द स्वराज्य' महात्मा गांधी की आज़ाद भारत के नवनिर्माण की बीज पुस्तक है, जो 1909 में लिखी गई थी। मूलतः गुजराती भाषा में लिखी यह पुस्तक 86 पृष्ठों की है तथा नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद द्वारा प्रकाषित है और 10 रुपये में उपलब्ध है। अमृतलाल ठाकोरदास नाणावटी द्वारा अनुवादित इस पुस्तक को महादेव हरिभाई देसाई

★ राजस्थान साहित्य अकादमी के पूर्व अध्यक्ष। 7/122, मालवीय नगर, जयपुर (राज.) 302017

और काका कालेलकर ने अपनी भूमिका और प्रस्तावना के साथ प्रस्तुत किया है। मैंने भी 'हिन्द स्वराज्य' और गांधीजी की एक दूसरी अमर कृति 'सत्य के प्रयोग' (आत्मकथा) को बचपन में ही पढ़ा है।

अधिकांषतः ज्ञान की खोज में जुटे लोग यह मानते हैं कि एडम स्मिथ की पुस्तक 'वैल्थ ऑफ नेषन्स', कार्ल मार्क्स की पुस्तक 'कम्युनिस्ट मैनीफेस्टो' और महात्मा गांधी की पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' ने दो विष्वयुद्धों से पीड़ित मनुष्य और समाज को बदलने और बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। एक शताब्दी पूर्व लिखी इस 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक पर वर्तमान महावीर खुला विष्वविद्यालय, कोटा के कुलपति नरेष दाधीच इन दिनों राज्य के सभी सम्भागों पर चर्चा–परिचर्चा करवा रहे हैं तथा अपने क्षेत्रीय केन्द्रों पर गांधी अध्ययन केन्द्र भी स्थापित कर रहे हैं, ताकि महात्मा गांधी एक बार फिर से युवा–विद्यार्थी पाठकों के बीच विचार–विमर्ष का आधार बन सकें। 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक में महाभारत के 18 अध्यायों की तरह 20 अध्याय हैं, जिन्हें गांधीजी ने (1) कांग्रेस और उसके कर्ताधर्ता (2) बंगभंग (3) अषांति और असंतोष (4) स्वराज्य क्या है (5) इंग्लैंड की हालत (6) सभ्यता का दर्षन (7) हिन्दुस्तान कैसे गया? (8) हिन्दुस्तान की दषा 1 से 5 अध्याय (13) सच्ची सभ्यता कौन–सी? (14) हिन्दुस्तान कैसे आज़ाद हो? (15) इटली और हिन्दुस्तान (16) गोला–बारूद (17) सत्याग्रह–आत्मबल (18) षिक्षा (19) मषीनें और (20) छुटकारा नाम से संवाद शैली (पाठक–संपादक) के रूप में प्रस्तुत किया है।

2 अक्टूबर 1869 को पोरबंदर (गुजरात) में जन्मे मोहनदास करमचंद गांधी ने 'हिन्द स्वराज्य' का यह सपना 40 वर्ष की उम्र में, जब दक्षिण अफ्रीका (1893–1914) में थे और रंगभेद के विरुद्ध संघर्ष के नायक थे, देखा था। 'हिन्द स्वराज्य' की रचना मूलतः गांधीजी के लिए 'मेरे सपनों का भारत' जैसा आख्यान है तथा पूरब–पष्चिम की सभ्यता, संस्कृति और डेमोक्रेसी के बुनियादी सवालों को लेकर भारत की नियति और दिषा का घोषणा–पत्र है, जिसमें वह कहते हैं कि (1) अपने मन का राज्य, स्वराज्य है (2) उसकी कुंजी सत्याग्रह, आत्मबल है (3) उस बल को अपनाने के लिए स्वदेषी को पूरी तरह अपनाने की ज़रूरत है, और (4) हम जो करना चाहते हैं, वह अंग्रेज़ों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है, इसलिए या उन्हें सज़ा देने के लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है।'

आज महात्मा गांधी को इस दुनिया से गए 61 साल (30 जनवरी, 1948) हो गए हैं और हम सबके प्रिय बापू को 'राष्ट्रपिता' भी कहा जाता है। गांधीजी इस दुनिया के प्रभु ईसा मसीह, भगवान बुद्ध, भगवान महावीर और पैगम्बर हज़रत मोहम्मद के बाद एकमात्र ऐसे महापुरुष है, जिन्हें दीन और दुनिया एक युगावतार ही मानती है। महात्मा गांधी पर दुनिया में सबसे अधिक शोध–अनुसंधान हुआ है और कविता, कहानी, उपन्यास लिखे गए हैं, तो चित्र और फ़िल्में भी बनी हैं। कहने का तात्पर्य सिर्फ़ यही है कि अमेरिका में मार्टिन लूथर किंग, दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला और 20वीं शताब्दी में ग़ुलामी से आज़ादी की लड़ाई लड़कर स्वतंत्र हुए अधिकांष देष गांधीजी की सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह से प्रभावित और प्रेरित रहे हैं। सभ्यता, संस्कृति और समय–इतिहास का अध्ययन भी यही कहता है कि गांधीजी सत्य की आवाज़ हैं, अहिंसा की मषाल हैं तथा तीसरी दुनिया के देषों से भी आगे–षांति और विकास का विकल्प हैं।

यदि आप 'हिन्द स्वराज्य' के बीजमंत्र को समझना चाहें, तो आपको टाल्सटॉय, शेरार्ड, एडवर्ड कारपेंटर, टेलर, ब्लाऊण्ट, थोरो, रस्किन, मैजिनी, प्लेटो, मैक्स

नार्डू, दादाभाई नौराजी और रजनी पामदत्त जैसे ऋषि, मनीषी और इतिहासकारों के बीच से गुजरना होगा, क्योंकि महागंगा की ताकत उसे बनास, चम्बल, यमुना जैसी सहस्र लोकधाराओं से ही मिलती है। गांधीजी ने यही कहा है कि– 'यह किताब (हिन्द स्वराज्य) द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है, हिंसा की जगह आत्मबलिदान को रखती है, पषुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल (सत्याग्रह) को खड़ा करती है।'

गांधीजी का 'हिन्द स्वराज्य' आज 100 साल बाद भी इसीलिए हम सबको याद आ रहा है कि आज़ादी और तथाकथित विकास के बाद भी हमारा भारत सामाजिक–आर्थिक असमानता, अन्याय और असंतोष के महाजाल में वैसे ही फंसा है, जैसे महाभारत के युद्ध में कर्ण का रथ ख़ून के दलदल में फंस गया था। चारों तरफ़ हिंसा, भुखमरी और शोषण का दुष्चक्र बना हुआ है तथा राज्य व्यवस्था ने गांधी की मूर्ति और तस्वीरें लगाकर गांधी के आम आदमी को पीड़ित करने का खेल रचा दिया है। हम सभी वैष्णवजन चतुर–सयाने बनकर भी दूसरों की पीड़ा को नहीं समझ रहे हैं और भौतिकवादी, सूचना–प्रौद्योगिकी की प्रधान, हिंसक जीवनषैली के अलमबरदार बन गए हैं। हम सभी को महात्मा गांधी का 'हिन्द स्वराज्य' फिर से समझना– पढ़ना चाहिए, क्योंकि आध्यात्मिक समाजवाद और सत्य से प्रेरित अहिंसावाद ही भारत का भविष्य बना सकता है।

'हिन्द स्वराज्य' मूलतः गांधीजी की वैचारिक अवधारणाओं की व्यावहारिक मार्गदर्षक जीवनप्रणाली है, जो सौ साल पहले ही भारत की जीवन औषधि के रूप में लिखी गई थी और आज भी प्रासंगिक है। 'मज़बूरी का नाम महात्मा गांधी' जैसी लोकधारणा भी इसी बात का प्रमाण है कि जब भी समाज में असत्य का तूफ़ान, हिंसा की आंधी और अन्याय का अंधेरा सक्रिय होता है, तब गांधी का 'हिन्द स्वराज्य' हमें यह बात याद दिलाता है कि अषांति असल में असंतोष है। उसे आजकल हम 'अनरेस्ट' कहते हैं। कांग्रेस के ज़माने में वह 'डिस्कण्टेण्ट' कहलाता था। कांग्रेस के संस्थापक मिस्टर ह्यूम हमेषा कहते थे कि 'हिन्दुस्तान में असंतोष फैलाने की ज़रूरत है। यह असंतोष बहुत उपयोगी चीज़ है। इसलिए हर एक सुधार के पहले असंतोष होना ही चाहिए। चालू चीज़ के ऊब जाने पर ही उसे फेंक देने को मन करता है।' ऐसे में भारत के असंतोष ने ही अंग्रेज़ों को देष से भगाया था और आगे भी यही असंतोष भारत से असमानता, अन्याय और हिंसा को भगाएगा।

'हिन्द स्वराज्य' को आप कृपाकर अवष्य पढ़ें, क्योंकि इस 21वीं शताब्दी की भौतिक संस्कृति और पूंजी–आधारित राज्य शैली की मुठभेड़ गांधीजी के आध्यात्मिक लोक स्वराज्य से ही होगी। अंधा यंत्रवाद और शक्तिषाली देषों का सैन्यवाद तथा बाज़ार का उपभोक्तावाद आज भारत की आंतरिक शांति में अवरोध डाल रहा है। अतः 'हिन्द स्वराज्य' का संसदीय स्वराज्य ही हमें गांधीजी की बार–बार याद दिलाता है।

'हिन्द स्वराज्य' क्यों?

★ रेणु व्यास

आज पूरा विश्व जिस आर्थिक संकट से घिरा हुआ है, वह है 'आर्थिक मंदी''। लेकिन प्रश्न यह है कि मन्दी है किस कारण? मकान ख़ाली पड़े हुए हैं और करोड़ों लोग फुटपाथ पर सो रहे हैं, विलासिता के सामानों से बाज़ार अटे पड़े हैं, कारख़ानों को अपना उत्पादन कम करना पड़ रहा है तो दूसरी ओर आम आदमी को आटे–दाल के नये भाव मालूम पड़ रहे हैं। 'मांग और पूर्ति' के सिद्धान्त को ब्रह्म–वाक्य माननेवाले पूंजीवादी अर्थव्यवस्था अपने ही दुश्चक्र में फंस गई है, जहां वस्तुओं की पूर्ति मांग से ज़्यादा है, चीज़ों की ज़रूरत भी है लेकिन ज़रूरत को मांग में बदलने के लिए ग्राहक की क्रय–क्षमता नहीं है। 1929 ई. की आर्थिक मंदी अपने साथ दूसरा विश्वयुद्ध लेकर आई थी, क्या आज फिर हम एक नये विनाश के कग़ार पर खड़े हैं? रूस में साम्यवाद ने इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया था। मगर रूस में कम्युनिस्ट शासन का पतन और चीनी सरकार द्वारा पूंजीवाद अपनाने के बाद यह यह बहस ख़त्म सी मान ली गई कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का कोई विकल्प भी हो सकता है, अच्छा हो या बुरा अब यही विश्व की नियति है। और क्या होगा ग़रीब आदमी का? यह व्यवस्था 'आदमी' को नहीं पहचानती, उसका देवता तो 'उपभोक्ता' है। 'प्रतियोगिता के युग' में 'सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट' के नियम के साये में उसे भी ज़िन्दा रहना हो तो अपने बूते टिका रहे, सरकार का काम देश चलाना है चैरिटी करना नहीं।

इस आर्थिक संकट ने दुनिया को यथास्थिति का विकल्प खोजने को बाध्य कर दिया है। क्या गांधीजी के विचार कोई विकल्प प्रस्तुत करते हैं? 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तिका उनके विचारों को बीज–रूप है। गांधीजी के विचारों का उत्तरोत्तर विकास हुआ है लेकिन इस पुस्तिका में व्यक्त विचारों में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हुआ। यह भी सहयोग है कि 2009 इस पुस्तक के लिए शताब्दी वर्ष है। सौ साल पुरानी इस पुस्तक के पन्ने पलटकर हम आज के ज़माने के प्रश्नों से जूझने की कोशिश करेंगे।

पहला प्रश्न तो यह कि आज भारत पर भारतीयों का शासन है तब इस 'स्वराज्य' और 'हिन्द स्वराज्य' के 'स्वराज्य' में क्या फ़र्क़ है? क्या यही स्वराज्य है है जिसकी ओर 15 अगस्त 1947 को पूरा विश्व नई आशा के साथ देख रहा था? हमने अंग्रेज़ों को भगा दिया लेकिन उनकी 'सभ्यता' को कसकर पकड़ लिया उस सभ्यता को जो शोषण पर आधरित थी। यही कारण है कि आज एक ही देश में दो तरह के देश हैं– एक देश 'इंडिया' जो चमचमाते राजमार्गों पर दौड़ रहा है, पंचसितारा होटलों के वातानुकूलित कक्षों में बैठकें करता है, मैकडॉनल्ड खाता है और पेप्सी पीता है या फिर मॉल्स में मनबहलाव के लिए शॉपिंग करता है, दूसरी तरफ़ 'भारत' कर्ज़ा न चुका पाने से आत्महत्या को मज़बूर है, कम क़ीमत पर चावल पाने के लिए लंबी क़तार में खड़ा है या फिर कालाहांडी में इस क़तार तक भी नहीं पहुंच पाता है। अर्थात् 15 अगस्त 1947 को मिली आज़ादी इस 'भारत' के लिए अधूरी है–

★ 29, छतरीवाली खान, सेंती, चित्तौड़गढ़ में रहती हैं।

''समर शेष है, इस स्वराज्य को सत्य बनाना होगा जिनका है यह न्यास, उन्हें सत्वर पहुंचाना होगा'' भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का राजनीतिक क्षेत्र से भी अधिक घातक असर आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्र पर पड़ा, जिसके उपचार का उपाय 'हिन्द स्वराज्य' में है। यही कारण है कि इसका विरोध अंग्रेज़ों से नहीं पाश्चात्य 'शैतानी सभ्यता' से है। गांधीजी पश्चिमी सभ्यता को 'शैतानी सभ्यता' इस कारण कहते हैं क्योंकि यह सभ्यता शोषण पर आधारित है, इसकी मूल प्रेरणा लोभ है। अतः गांधीजी के मत में यह अनैतिक है। हम सभी जानते हैं कि यूरोप की अत्यन्त साहसिक भौगोलिक खोजों के पीछे इसी लोभ से प्रेरणा का काम किया था। वैज्ञानिक आविष्कारों के मूल में जिज्ञासा की प्रवृत्ति भले रही हो किन्तु जो आद्यौगिक प्रगति यूरोप में क्रांति के रूप में आई उसकी क़ीमत पहले यहां के ग़रीब किसानों और मज़दूरों को चुकानी पड़ी फिर उसके विकल्प के रूप में भारत, चीन और अफ्रीकी देशों को उपनिवेशों के रूप में।

भारत जैसे औद्योगिक देश को कच्चे माल के उत्पादक और तैयार माल के बाज़ार के रूप में उपनिवेश बनाने में सबसे अधिक सहायक हुई– रेलवे। ब्रिटिश राज में अदालतें भी आदिवासियों और किसानों से उनकी ज़मीन छीनने का माध्यम बन गई थीं। रेल और वकील के साथ ही गांधीजी डॉक्टर को भी शामिल कर लेते हैं क्योंकि डॉक्टर मनुष्य को देहमात्र मानकर इलाज़ करते हैं तथा वे इस पेशे के मूल प्रेरणा भी सेवा नहीं लोभ मानते हैं। साम्राज्यवादी शोषण के अस्त्र बनने के कारण गांधीजी ने 'हिन्द स्वराज्य' में रेल, वकील और डॉक्टर की इतनी कटु आलोचना की है कि कई बार यह भ्रम हो जाता है कि क्या यह पुस्तक आदिम युग की और लौटने का प्रयास है?

पाश्चात्य सभ्यता के इस विकृत रूप की भर्त्सना रस्किन, थोरो, एडवर्ड, कारपेंटर, टेलर, मैक्स नार्डू जैसे पाश्चात्य चिन्तकों ने भी की है। जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' और टॉलस्टॉय के विचारों से गांधीजी बहुत प्रभावित थे। 'हिन्द स्वराज्य' की तरह इन सभी चिन्तकों का विरोध इस विकृति के एक कारण 'यंत्रवाद' से है जिसने मनुष्य को देह और बुद्धि तक सीमित कर दिया और उनके मन और आत्मा की शक्तियों को उपेक्षित कर दिया। इन सभी चिन्तकों के प्रयासों का फल है कि हिरोशिमा पर परमाणु बम के विस्फोट के बाद विज्ञान की नैतिकता का प्रश्न उठने लगा। गांधीजी की यह विशेषता है कि वे राजनीति और अर्थशास्त्र समेत जीवन के सभी क्षेत्रों में नैतिकता को अनिवार्य मानते हैं।

गांधीजी यंत्र का विरोध निम्न कारण से करते हैं–

1. यंत्र ग़रीबों के शोषण का साधन बनते हैं,
2. बेरोज़गारी को बढ़ाते हैं,
3. ग़रीब और अमीर के बीच की खाई को और अधिक बढ़ाते हैं,
4. आदमी को अपना ग़ुलाम बना लेते हैं।

दरअसल गांधीजी सभी तरह के यंत्रों के विरोधी नहीं हैं, वे यंत्रों के प्रति पागलपन के विरोधी हैं। चरखा, तकली करघा भी यंत्र ही हैं और गांधीजी स्वयं चरखे की उत्पादकता बढ़ाने के लिए उसमें तकनीकी सुधार किए जाने के लिए उत्सुक थे। रेल, अस्पताल अदालतों को भी वे 'आवश्यक बुराई' के रूप में स्वीकार करने को तैयार हैं, यद्यपि उन्हें ख़ुशी होगी यदि इनका कुदरती नाश हो जाए। गांधीजी द्वारा यंत्रों के विरोध का एक कारण यह भी हो सकता है कि बड़े यंत्रों के लिए बड़ी पूंजी की

आवश्यकता होती है, जिससे उत्पादन पर पूंजीपति का नियंत्रण हो जाता है। यही कारण है कि इस्पात–उत्पादक इकाई जैसे आवश्यक बड़ी पूंजी के कारखानों (जिन्हें कुटीर उद्योग के रूप में चलाना संभव नहीं है) पर गांधीजी राजकीय स्वामित्व का समर्थन करते हैं। पूंजीवाद उत्पादन और वितरण दोनों स्तरों पर केन्द्रीकृत व्यवस्था है, साम्यवाद वितरण में विकेन्द्रित है किन्तु उत्पादन में केन्द्रीकृत, गांधीजी जिस अर्थव्यवस्था को सुझाते हें वह उत्पादन और वितरण दोनों स्तरों पर विकेन्द्रित होगी। जब तक पूर्ण विकेन्द्रीकरण नहीं होगा तब तक सत्ता शोषण का माध्यम बनती रहेगी।

'हिन्द स्वराज्य' में गांधीजी अंग्रेज़ी राज को नहीं उसके मूल में स्थित इसी 'शैतानी सभ्यता' को हिन्दुस्तान की बदहाली का कारण मानते हैं। इसका कारण यह है कि विज्ञान के आधुनिक यंत्रों और हथियारों से लैस पाश्चात्य सभ्यता मनुष्य की देह और बुद्धि तक पहुंचकर ठहर जाती है, उसकी आत्मा तक नहीं पहुंचती। अतः इस सभ्यता के खात्मे के लिए गांधीजी आत्मा की शाक्ति पर आधारित 'सत्याग्रह' को अमोघ साधन प्रतिपादित करते हैं। यह अमोघ इसलिए है क्योंकि सत्याग्रही और उसके विरोधी दोनों की आत्मा का उन्नयन करता है, दरअसल में 'सत्याग्रही' को कोई शत्रु होता ही नहीं है। इसलिए 'हिन्द स्वराज्य' के बारे में गांधीजी स्वयं लिखते हैं कि

''यह द्वेषधर्म की जगह प्रेमधर्म सिखाती है, हिंसा के जगह आत्मबलिदान को रखती है, पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।''

'हिन्द स्वराज्य' सिखाती है कि अन्याय और शोषण का विरोध हर क़ीमत पर करो क्योंकि कोई भी शोषक शोषित की निष्क्रिय सहमति के बिना उसका शोषण नहीं कर सकता। इसी संदर्भ में इस पुस्तिका में गांधीजी कहते हैं कि हिन्दुस्तान अंग्रेज़ों ने लिया नहीं है बल्कि हमने उन्हें दिया है। अन्याय और शोषण का विरोध अवश्य किया जाना चाहिए मगर उचित साधन से। पूर्ण अभय के बिना सत्याग्रही अहिंसक नहीं बन सकता, यही 'सत्याग्रह' और 'पैसिव रेजिस्टेंस' में मूलभूत फ़र्क़ हैं। 'साधन की शुचिता' 'हिन्द स्वराज्य' का प्रमुख प्रतिपाद्य है जो गांधी–विचार का केन्द्रबिन्दु है। इस पुस्तिका में गांधीजी मानते हैं कि हिंसा पराधीनता समेत भारत के दुखों का इलाज नहीं है। इसके रचनाकाल 1909 ई. में प्रतिपादित इस धारणा का गांधीजी ने न केवल दक्षिणी अफ्रीका में परीक्षण किया वरन् 1919 के बाद भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को एक नई नैतिक ऊंचाई प्रदान की जिससे अन्ततः भारत को आज़ादी मिली।

अहिंसा से स्वराज्य के लिए संघर्ष का पहला प्रयोग भारत में ही क्यों संभव है इसके पीछे गांधीजी भारतीय सभ्यता की धर्मप्राणता को कारण मानते हैं। गांधीजी का 'धर्म' से यहां तात्पर्य सब धर्मों में व्याप्त नैतिक मूल्यों से है। अहिंसा आत्मा का अस्त है और आध्यात्मिकता भारतीय सभ्यता–संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। वेदांत (जो सबसे अधिक लोकप्रिय भारतीय दर्शन है) उसकी मूल अवधारणा यह है कि सर्वत्र एक ही ब्रह्म की सत्ता है, सभी आत्माएं ब्रह्मस्वरूप ही हैं। अतः सत्याग्रह से इसके मूल स्वरूप को जागृत करना स्वाभाविक कार्य है। भारत में ''आत्मा'' को मूलतः सच्चिदानन्द स्वरूप माना जाता है, विकृतियां इसमें आपाततः प्रतीत होती हैं। यह पाश्चात्य दर्शन की उस धारणा से बिल्कुल विपरीत है जहां मनुष्य को मूलतः पतित और स्वार्थी प्राणी माना गया है जो समाज और धर्मग्रंथों के दबाव से नैतिक बनता है। मनुष्यमात्र के शुभत्व में अटूट विश्वास ही हृदय–परिवर्तन में गांधीजी के विश्वास का आधार है। इसकी भारतीय

दर्शनों की धारणाओं से भी संगति बैठती है।

अकसर हिंसक क्रांति के बाद सत्ता तो बदल जाती है किन्तु सत्ता का स्वभाव नहीं बदलता। 'हिन्द स्वराज्य' केवल सत्ता–परिवर्तन का लक्ष्य नहीं मानती वरन् उसके स्वभाव में परिवर्तन, बल्कि सत्ताविहीनता की स्थिति लाना लक्ष्य मानती है। यह आमूल परिवर्तन का समर्थन करती है, ऊपरी रूप–परिवर्तन का नहीं। इस सत्ता विहीनता के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति आत्मानुशासित हो अर्थात् वह अपने मन में अपना राज्य पा ले। यही 'हिन्द स्वराज्य' में प्रतिपादित 'स्वराज्य' है जिसके लिए गांधीजी व्यक्तिगत रूप से प्रयत्नशील थे।

'हिन्द स्वराज्य' की 1921 में छपी आवृत्ति में गांधीजी ने स्पष्टतः स्वीकार किया कि इसमें प्रतिपादित 'स्वराज्य' के लिए उनकी निजी कोशिश जारी है मगर कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे स्वतंत्रता के संघर्ष का लक्ष्य हिन्दुस्तान की प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेन्टरी ढंग का स्वराज्य पाना ही है। आज आज़ादी के 61 सालों के बाद गांधीजी की कसौटी को अपनाते हुए यह देखना होगा कि सत्तासीन व समृद्ध वर्ग के मुक़ाबले देश के सबसे ग़रीब आदमी को इस स्वराज्य का लाभ कितना मिला है? यदि नहीं तो फिर पीछे मुड़कर सौ साल पीछे देखने की ज़रूरत है ताकि विषमता और शोषण से रहित सही मायनों में विकेन्द्रित लोकतांत्रिक समाज का निर्माण हो सके।

'हिन्द स्वराज्य' एक जीवन दृष्टि है जो गांधीजी के विचारों को समझने की कुंजी है। गांधी के विचार रंगभेद, नस्लभेद समेत प्रत्येक प्रकार के शोषण के विरुद्ध आम आदमी की शक्ति के रूप में तो प्रेरणास्पद हैं ही, परमाणविक हथियारों जैसे व्यापक विनाश के हथियारों से आतंकित विश्व भी गांधीजी के विचारों को त्राण खोज रहे हैं। किन्तु आज उनसे भी अधिक 'हिन्द स्वराज्य' पर्यावरण–प्रेमियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बन रही है। यह पुस्तक सादगी, स्वावलम्बन, समानता पर आधारित विकेन्द्रित अहिंसक अर्थव्यवस्था का मॉडल प्रस्तुत करती है, जो प्रकृति की इस सीमा को पहचानती है कि वह सभी आवश्यकताओं को तो पूरा कर सकती है किन्तु एक भी व्यक्ति का लालच बर्दाश्त नहीं कर सकती।

'ग़रीबी हटाओ' के नारे को सत्य बनाने के लिए साधन–सम्पन्न वर्ग द्वारा अपनी विलासिता कम करके 'स्वैच्छिक ग़रीबी' की आरे बढ़ना आवश्यक है ताकि प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताएं पूरी हो सकें। पारंपरिक अर्थव्यवस्था में पश्चिमी देशों की समृद्धि उनके उपनिवेशों की ग़रीबी पर टिकी हुई थी, आज भारत जैसे विकासशील देशों में पश्चिमी देशों में इसी तर्ज पर हुए विकास की क़ीमत यहां का वंचित वर्ग चुका रहा है। इसी मॉडल पर चलकर यदि पूरी दुनिया को विकास करना है तो धरती को अपने उपनिवेश दूसरे ग्रहों पर ले जाने पड़ेंगे। अतः आवश्यकता है कि हम 'ऊपर से नीचे की ओर विकास' के अपने मॉडल को त्यागें और 'नीचे से ऊपर की ओर विकास' के प्रगतिशील मॉडल को अपनाएं। इस प्रयास में गांधी–विचार पथप्रदर्शक बन सकते हैं और यह रास्ता 'हिन्द स्वराज्य' से होकर जाता है।

हिन्द स्वराज्य से

सभ्यता क्या है?

पहले तो हम यह सोचें कि सभ्यता किस हालत का नाम है। इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी (दुनिया) की खोजों में और शरीर के सुख में धन्यता – सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं। इसकी कुछ मिसालें लें। सौ साल पहले यूरोप के लोग जैसे घरों में रहते थे उनसे ज़्यादा अच्छे घरों में आज वे रहते हैं; यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। इसमें शरीर के सुख की बात है। इसके पहले लोग चमड़े के कपड़े पहनते थे और भालों का इस्तेमाल करते थे। अब वे लंबे पतलून पहनते हैं और शरीर को सजाने के लिए तरह–तरह के कपड़े बनवाते हैं; और भाले के बदले एक के बाद एक पांच गोलियां छोड़ सके ऐसी चक्करवाली बन्दूक इस्तेमाल करते हैं। यह सभ्यता की निशानी है। किसी मुल्क के लोग, जो जूते वग़ैरा नहीं पहनते हों, जब यूरोप के कपड़े पहनना सीखते हैं, तो जंगली हालत में से सभ्य हालत में आए हुए माने जाते हैं। पहले यूरोप में लोग मामूली हल की मदद से अपने हित जात–मेहनत करके ज़मीन जोतते थे। उसकी जगह आज भाप के यंत्रों से हल चलाकर एक आदमी बहुत सारी ज़मीन जोत सकता है और बहुत–सा पैसा जमा कर सकता है। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग कुछ ही किताबें लिखते थे और वे अनमोल मानी जाती थीं। आज हर कोई चाहे जो लिखता है और छपवता है और लोगों के मन को भरमाता है। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग बैलगाड़ी से रोज बारह कोस की मंज़िल तय करते थे। आज रेलगाड़ी चार सौ कोस की मंज़िल मारते हैं। यह तो सभ्यता की चोटी मानी गई है। यह सभ्यता जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है वैसे वैसे यह सोचा जाता है कि लोग हवाई जहाज़ से सफ़र करेंगे और थोड़े ही घंटों में दुनिया के किसी भी भाग में जा पहुंचेंगे। लोगों को हाथ–पैर हिलाने की ज़रूरत नहीं रहेगी। एक बटन दबाया कि आदमी के सामने पहनने की पोशाक हाज़िर हो जाएगी, दूसरा बटन बटन दबाया कि उसे अख़बार मिल जायेंगे, तीसरा दबाया कि उसके लिए गाड़ी तैयार हो जायेगी; हर हमेशा नये भोजन मिलेंगे, हाथ–पैर का काम ही नहीं पड़ेगा, सारा काम कल से ही किया जाएगा। पहले जब लोग लड़ना चाहते थे तो एक–दूसरे का शरीर–बल आज़माते थे। आज तो तोप के एक गोले से हज़ारों जानें ली जा सकती हैं। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग खुली हवा में अपने को ठीक लगे उतना काम स्वतन्त्रता से करते थे। अब हज़ारों आदमी अपने गुज़ारे के लिए इकट्ठा होकर बड़े कारख़ानों में या खानों में काम करते हैं। उनकी हालत जानवर से भी बदतर हो गई है। उन्हें सीसे वग़ैरा के कारख़ानों में जान को जोख़िम में डालकर काम करना पड़ता है। इसका लाभ पैसेदार लोगों

को मिलता है। पहले लोगों को मार–पीटकर ग़ुलाम बनाया जाता था; आज लोगों को पैसे का और भोग का लालच देकर ग़ुलाम बनाया जाता है पहले जैसे रोग नहीं थे वैसे रोग आज लोगों में पैदा हो गये हैं। और उसके साथ डॉक्टर खोज करने लगे हैं कि ये रोग कैसे मिटाये जाएं। ऐसा करने से अस्पताल बढ़े हैं। यह सभ्यता की निशानी मानी जाती है। पहले लोग पत्र लिखते थे तब ख़ास क़ासिद उसे ले जाता था और उसके लिए काफ़ी ख़र्च लगता था। आज मुझे किसी को गालियां देने के लिए पत्र लिखना हो, तो एक पैसे में मैं गालियां दे सकता हूं, किसी को मुझे मुबारकबाद देना हो तो भी मैं उसी दाम में पत्र भेज सकता हूं। यह सभ्यता की निशानी है। पहले लोग दो या तीन बार खाते थे और वह भी ख़ुद हाथ से पकाई हुई रोटी और थोड़ी तरकारी। अब तो हर दो घंटे पर खाना चाहिये, और वह यहां तक कि लोगों को खाने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती। और कितना कहूं? यह सब आप किसी भी पुस्तक में पढ़ सकते हैं। ये सब सभ्यता की सच्ची निशानियां मानी जाती हैं। और अगर कोई भी इससे भिन्न बात समझाये, तो वह भोला है ऐसा निश्चय ही मानिये। सभ्यता तो मैंने जो बतायी वही मानी जाती है। उसमें नीति या धर्म की बात ही नहीं है। सभ्यता के हिमायती साफ़ कहते हैं कि उनका काम लोगों को धर्म सिखाने का नहीं है। धर्म तो ढोंग हैं, ऐसा कुछ लोग मानते हैं और कुछ लोग धर्म का दंभ करते हैं, नीति की बातें भी करते हैं। फिर भी मैं आपसे बीस बरस के अनुभव के बाद कहता हूं कि नीति के नाम से अनीति सिखलाई जाती है। ऊपर की बातों में नीति हो ही नहीं सकती, यह कोई बच्चा भी समझ सकता है। शरीर का सुख कैसे मिले, यही आज की सभ्यता ढूंढ़ती है; और यही देने की कोशिश करती है। परन्तु वह सुख भी नहीं मिल पाता।

यह सभ्यता को अधर्म है और यह यूरोप में इतने दरज़े तक फैल गयी है कि वहां के लोग आधे पागल देखने में आते हैं। उनमें सच्ची कूबत नहीं हैं; वे नशा करके अपनी ताक़त क़ायम रखते हैं। एकान्त में वे बैठ ही नहीं सकते। जो स्त्रियां घर की रानियां होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या कोई मज़दूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंड में ही चालीस लाख ग़रीब औरतों को पेट के लिए सख़्त मज़दूरी करनी पड़ती है, और आजकल इसके कारण 'सफ़्रेज़ेट' का आन्दोलन चल रहा है।

यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज धर कर बैठे रहेंगे, तो सभ्यता की चपेट में आये हुए लोग ख़ुद की जलायी हुई आग में जल मरेंगे। पैगम्बर मोहम्मद साहब की सीख के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिन्दू धर्म इसे निरा 'कलजुग' कहता है। मैं आपके सामने इस सभ्यता का हूबहू चित्र नहीं खींच सकता। यह मेरी शक्ति के बाहर है। लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज़ प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करनेवाली और ख़ुद नाशवान है। इससे दूर रहना चाहिए और इसीलिए ब्रिटिश और दूसरी पार्लियामेन्टें बेकार हो गईं। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट अंग्रेज़ प्रजा की ग़ुलामी की निशानी है, यह पक्की बात है। आप पढ़ेंगे और सोचेंगे तो आपको भी ऐसा ही लगेगा। इसमें आप अंग्रेज़ों का दोष न निकालें। उन पर तो हमें दया आनी चाहिये। वे क़ाबिल प्रजा हैं इसलिए किसी दिन उस जाल से निकल जायेंगे ऐसा मैं मानता हूं। वे साहसी और मेहनती हैं। मूल में उनके विचार अनीतिभरे नहीं हैं, इसलिए उनके बारे में मेरे मन में उत्तम ख़्याल ही है। उनका दिन बुरा नहीं है। यह सभ्यता उनके लिए कोई अमिट रोग नहीं है। लेकिन अभी भी वे उस रोग में फंसे हुए हैं, यह तो हमें भूलना ही नहीं चाहिये।

हिन्द स्वराज्य से

तालीम क्या है?

शिक्षा : तालीम का क्या अर्थ है? अगर इसका अर्थ सिर्फ़ अक्षर–ज्ञान ही हो, तो यह तो एक साधन जैसी ही हुई। उसका अच्छा उपयोग भी हो सकता है और बुरा भी हो सकता है। एक शस्त्र से चीर–फाड़ करके बीमार को अच्छा किया जा सकता है और वही शस्त्र किसी की जान लेने के लिए भी काम में लाया जा सकता है। अक्षर–ज्ञान का भी ऐसा ही है। बहुत से लोग उसका बुरा उपयोग करते हैं, यह तो हम देखते ही हैं। उसका अच्छा उपयोग प्रमाण में कम ही लोग करते हैं। यह बात अगर ठीक है तो इससे यह साबित होता है कि अक्षर–ज्ञान से दुनिया को फ़ायदे के बदले नुक़सान ही हुआ है।

शिक्षा का साधारण अक्षर–ज्ञान ही होता है। लोगों को लिखना, पढ़ना और हिसाब करना सिखाना बुनियादी या प्राथमिक– प्रायमरी– शिक्षा कहलाती है। एक किसान ईमानदारी से ख़ुद खेती करके रोटी कमाता है। उसे मामूली तौरी पर दुनियवी ज्ञान है। अपने मां–बाप के साथ कैसे बरतना, अपनी स्त्री के के साथ कैसे बरतना, बच्चों से कैसे पेश आना, जिस देहात में वह बसा हुआ है वहां उसकी चाल ढाल कैसी होनी चाहिये, इस सबका उसे काफ़ी ज्ञान है। वह नीति के नियम समझता है और उनका पालन करता है। लेकिन वह अपने दस्तख़त करना नहीं जानता। इस आदमी को आप अक्षर–ज्ञान देकर क्या करना चाहते हैं? उसके सुख में आप कौन सी बढ़ती करेंगे? क्या उसकी झोंपड़ी या उसकी हालत के बारे में आप उसके मन में असंतोष पैदा करना चाहते हैं? ऐसा करना हो तो भी उसे अक्षर–ज्ञान देने की ज़रूरत नहीं है। पश्चिम के असर के नीचे आकर हमने यह बात चलायी है कि लोगों को शिक्षा देनी चाहिये। लेकिन उसके बारे में हम आगे–पीछे की बात सोचते ही नहीं।

आज ऊंची शिक्षा को लें। मैं भूगोल–विद्या सीखा, खगोल–विद्या (आकाश के तारों की विद्या) सीखा, बीजगणित (एलजब्रा) भी मुझे आ गया, रेखागणित (ज्यॉमेट्री) का ज्ञान भी मैंने हासिल किया, भूगर्भ–विद्या को भी मैं पी गया। लेकिन उससे क्या? उससे मैंने अपना कौन सा भला किया? अपने आसपास के लोगों का क्या भला किया? किस मक़सद से मैंने वह ज्ञान हासिल किया? उससे मुझे क्या फ़ायदा हुआ? एक अंग्रेज़ विद्वान् (हक्सली) ने शिक्षा के बारे में यों कहा है : ''उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसके शरीर को ऐसी आदत डाली गई है कि वह उसके बस में रहता है, जिसका शरीर चैन से और आसानी से सौंपा हुआ काम करता है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है। उसने सच्ची शिक्षा पाई है, जिसका मन कुदरती क़ानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियां उसके बस में हैं, जिसके मन की भावनायें बिलकुल शुद्ध हैं, जिसे नीच कामों से नफ़रत है और जो दूसरों को अपने जैसा मानता है। ऐसा आदमी ही सच्चा शिक्षित(तालीमशुदा) माना जायगा, क्योंकि वह कुदरत के कानून के मुताबिक़ चलता है। कुदरत उसका अच्छा उपयोग करेगी और वह कुदरत का अच्छा उपयोग करेगा।'' अगर यही सच्ची शिक्षा हो तो मैं कसम खाकर कहूंगा कि ऊपर जो शास्त्र मैंने गिनाये हैं उनका उपयोग मेरे शरीर या मेरी इन्द्रियों को बस में करने के लिए मुझे नहीं करना पड़ा। इसलिए प्रायमरी–प्राथमिक शिक्षा को लीजिये या ऊंची शिक्षा को लीजिये, उसका उपयोग मुख्य बात में नहीं होता। उससे हम मनुष्य नहीं बनते– उससे हम अपना कर्तव्य नहीं जान सकते।

हिन्द स्वराज्य
भारत निर्माण की मार्गदर्शिका

मनसुख सल्ला

1909 में इंग्लैंड से वापस लौटते समय स्टीमर किलडोनन केसल पर क़रीब दस दिनों में लिखे गये इस दस्तावेज़ में एक अप्रतिम मनीषी का नवयुग दर्शन प्रकट हुआ है। इसकी प्रस्तुति में तत्कालीन युग संदर्भों का उल्लेख होने पर भी वह पहले के सिद्धांतों को छूता है। ऐसे मूल्यवान विचारों की चर्चा में जिस पैनी तार्किकता की अपेक्षा रहती है, कई जगह 'प्रोफ़ेसरों को' नहीं दीखती। परंतु गांधीजी सिर्फ़ तर्काधारित लिखावट करनेवाले अभ्यासी नहीं थे। अपनी अनुभूति को बिना किसी लाग–लपेट के सपाट भाषा में कहनेवाले महात्मा थे। मानो, आलंकारिक वाणी उनके सरल और सादगीपूर्ण जीवन के साथ नहीं बैठती। हिन्द स्वराज्य के विचारों का बल तर्कों का नहीं, आत्मप्रतीति जन्य

★ लोकभारती सणोसरा में पूर्व आचार्य रहे हैं।

सरलोद्‌गार है। मानव के कल्याण के लिये दिल में जगी बेचैनी ने यह दर्शन खोजा है। यह केवल भारत ही नहीं, समस्त विश्व के लिये एक ऐसा दर्शन है जिसे बीत रहा समय ही सत्य सिद्ध करता चलेगा।

हिन्द स्वराज्य के दर्शन की प्रासंगिकता समझने के लिये, मानों बीच का गुज़रा हुआ समय ज़रूरी था। बीसवीं शती के आरंभ में लिखे गये इन विचारों को जब हम 21वीं शती के आरंभ में टटोलते हैं तो इस बीच बीते हुये समय की कुछ उल्लेखनीय, ध्यानपात्र घटनाओं को देखना पड़ेगा। इन युग संदर्भों ने गांधीजी के इन विचारों की पुष्टि की है।

(1) दो महाविश्वयुद्ध; (2) भारत को अहिंसक सत्याग्रही रास्ते से मिला हुआ स्वातंत्र्य; (3) परमाणु बम का आविष्कार और उसका हिरोशिमा और नागासाकी पर किया गया प्रयोग तथा इन पचास सालों में परमाणु शस्त्रों का खड़ा किया गया ज़खीरा; (4) राज्य सत्ता का अतिनियंत्रित, आत्यंतिकतावाला साम्यवाद का रूसी प्रयोग (जो टूट गया); (5) बढ़ता हुआ शहरीकरण और उससे उभरे हुए सवाल; (6) पर्यावरणीय प्रदूषण से जीव सृष्टि और पृथ्वी के लिये भी पैदा हुआ ख़तरा; (7) विश्व की बहुत बड़ी जनसंख्या के गले पर भुखमरी, अभाव, अनारोग्य और शोषण का लगा फंदा; (8) 'अविकसित' देशों पर 'विकसित देशों' की आर्थिक और मानसिक दमनकारी सर्वोपरिता, जिसके माध्यम–रूप यंत्र और विकसित टेक्नोलॉजी बनी है; (9) दिशाहीन भोगवादी जीवन की गति के दुष्परिणाम, जिनसे जीवन का सर्वांगी स्वास्थ्य बिगड़ गया है; (10) प्रचार–प्रसार माध्यमों का मानव मन पर बरपा संमोहन। इन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में हिन्द स्वराज्य' के गांधी विचार की निर्विकल्प प्रस्तुति समझ में आती है।

रेनेसा ने सभी चीज़ों के मध्य में मानव को रखा था। सभी क्रियाकलापों का आख़िरी लक्ष्य मानव हित बताया था। लेकिन आख़िरी डेढ़ सदी में सभी चीज़ों और क्रियाओं का लक्ष्य बाज़ार हो गया है। मानवीय मूल्यों की जगह बाज़ार, मुनाफ़ा और भौतिक सुखों की बाढ़ ने ले ली है। गांधीजी ने 91 वर्ष पहले हिंद स्वराज्य में जो भय दिखाया था, वह बाज़ार केन्द्रीय मूल्यों ने आज कर दिखाया है। इन बाज़ारी मूल्यों ने मानव गुणों, मानवीय व्यवहारों और प्रकृति के प्रति आचारों पर दुष्प्रभाव डाला है।

पूंजीवादी राष्ट्रों ने विभिन्न प्रकार के सुख, सुरक्षा और कल्याण राज्य की स्थापना के लिये प्रयत्न तो किये हैं। किन्तु मानवीय गौरव, जीवन का समतोल व सर्वांगी विकास और मनुष्य के अपने स्वराज्य की स्थापना के लिए यह पर्याप्त नहीं है। जिन संपन्न राष्ट्रों ने अपनी भौतिक आवश्यकताएं ज़रूरत से अधिक पायी हैं तथा प्राकृतिक शक्तियों के शिकंजे से मुक्ति पायी है, उन्हीं राष्ट्रों ने अन्य देशों को तो आर्थिक और मानसिक गुलामी के शिकंजे में बांध दिया है। सैनिकी साम्राज्यवाद का स्थान आर्थिक और मानसिक प्रभुत्व ने ले लिया है, यह शोषण सूक्ष्म तो है, पर ज़्यादा जलद है।

विगत 50 वर्षों में साधन और चीज़ों की विपुलता को ही प्रगति मानी जानेवाली अर्थव्यवस्था ने प्राकृतिक संपदा, संतुलित पर्यावरण, मानवीय समानता और सामाजिक न्याय को ख़त्म कर दिया है। डाकू–सभ्यता का निर्माण किया है और टेकनोलॉजी आख़िरकार मानव पर हावी हो गयी है। मानव का नियंत्रण साधनों पर नहीं रहा। उन साधनों ने कुछ अवसर प्राप्त लोगों के हाथ में सारे समाज का हित और संचालन सौंप दिया है। इस विशाल परिप्रेक्ष्य में हिन्द स्वराज्य के विचारों को देखा जाय तो बापू के आर्षदर्शन को समझा जा सकता है।

यह स्पष्ट समझ लें कि इन युग–संदर्भों को बाहरी लाभ–हानि की परिभाषा द्वारा तोलने से गांधी विचार को जाना नहीं जा सकता। किरण देसाई ने ठीक ही कहा है 'संकरे दरवाज़े से हाथी को कमरे में लाने के लिये हाथी को काट–कूटकर कमरे में प्रवेश कराना मूर्खता का आख़िरी छोर है।' उसी तरह आज के हालात रहते हुए गांधी विचार की प्रस्तुति के बारे में सोचना मानव को काटकर इस टेकनोलॉजी में बैठाने जैसा होगा। पहले सोचने की ज़रूरत यह है कि हम किस प्रकार के समाज का निर्माण करना चाहते हैं, उसी के अनुसार अर्थरचना, राज्यरचना, शिक्षा का ढांचा, उत्पादन के साधन और अंततोगत्वा कैसी विश्व रचना हो यह सोचना पड़ेगा। हिन्द स्वराज्य में किस प्रकार की वैश्विक समाज रचना की स्थापना सूचित की गई है, यह भी देखना ज़रूरी है।

वर्तमान विश्वप्रवाह में गांधीजी के विचार कईयों को सब्ज़बाग़ से लग सकते हैं, अशक्यवत् भी। परंतु समग्र मानव जाति के सृष्टि चक्र और प्रकृति के साथ संतुलित, स्वस्थ और दुरुस्त संबंध स्थापना की दृष्टि से देखने पर हिन्द स्वराज्य के विचारों की नींव समझ में आयेगी। हिन्द स्वराज्य का दर्शन केवल आज के लिए ही नहीं, आनेवाले कल के लिये भी है। यह एक ऐसी मार्गदर्शिका है, जिसके आधार पर नूतन जगत् का निर्माण किया जा सकता है। यदि इस आर्षदृष्टि की उपेक्षा की गई तो हमारे लिए और भी पीड़ादायी सर्वनाश के रास्ते पर भटक जाने के बाद पश्चाताप करना ही बाक़ी रह जायेगा। गांधीजी जीवन को, उसके सभी पहलुओं को एक अखंड दर्शन के रूप में देखते हैं। जीवन की समग्रता को उसके किसी विभाजित पहलू मात्र से नहीं नापा जाता। गांधीजी ने कहा है, ''हर एक मनुष्य के लिये स्वराज्य का पाना अपने ऊपर अपना ही राज स्थापित करना ही स्वराज्य है। ऐसा स्वराज्य अपने कर्तव्य का परिणाम बनता है।''

हिन्द स्वराज्य का आर्षदर्शन सत्याग्रह और साधन शुद्धि में है। किसी भी युग में, कैसी भी स्थिति में और कहीं भी, यह स्वराज्य का रास्ता–दिखाता है। आज के राजकारण में सत्ता और उसे पाने के कोई भी तौर तरीक़े जायज माने जाते हैं। सत्य और धर्म जैसी बातें उनके हिसाब से गाजर का बजता खिलौना है। जब तक बजेगा बजायेंगे, फिर उसे खा जायेंगे। यह को सीख आज तक जगत् को मेकियावली ने सिखाई पर गांधीजी ने राजकारण में भी सत्य और साधन शुद्धि को अनुल्लंघनीय माना और जीवनभर सत्याश्रित राजकरण करके दिखाया। अहिंसक रास्ते से केवल स्वातंत्र्य पाया ही नहीं, जीवन के हरेक क्षेत्र के विकास में इसी मापदंड का अधिष्ठान किया। ''जो तलवार चलाएगा, वह उसी से खतम होगा'' इस बाइबल के वाक्य को गांधीजी ने सत्याग्रह द्वारा प्रमाणित किया।

दो विश्वयुद्धों के परिणाम हारनेवालों और जीतनेवालों के लिये भी हानिकारक साबित हुए हैं। इसकी तुलना में बापू की अहिंसा, प्रेम और शुभ संकल्पों के अमोघ शस्त्रों ने प्रतिस्पर्धा के वैरभाव को भी जला दिया था। सत्य, अहिंसा और आत्मसंयम केवल धर्मशास्त्र चर्चित कोरी बातें नहीं, दैनंदिन व्यवहार में भी उपास्य हैं। अहिंसा और सत्य का पुजारी उपयोग में लाये जानेवाले साधन की शुद्धि प्रथम देखेगा। गांधीजी ने यह मार्ग दिखाया।

हिन्द स्वराज्य जैसा कि नाम से लग सकता है, वह भारत के स्वातंत्र्य चिंतन की पुस्तक होगी। पर यह यथार्थ नहीं, केवल भारत पारतंत्र्य से छुटकारा पा जाय ऐसी गांधीजी की सीमित सोच नहीं। अंग्रेज़ी शासन से उनका सूचन अंग्रेज़ियत या पश्चिमी सभ्यता से है। उस संस्कृति के हमले का शिकार सारा विश्व हुआ है। इस सभ्यता का कुटिल व नंगा

स्वरूप इस शती में ज़्यादा हुआ है। मानवजाति को वृत्ति, प्रवृत्ति और किसी भी तरीक़े की गुलामी से छुटकारा दिलवाना बापू का लक्ष्य था। इसके कारण जिसमें हिंसा का आधार हो, शोषण की गुंजाइश हो, असमानता को बढ़ावा हो, मानव गरिमा का खंडन हो, वैसी किसी भी व्यवस्था को उन्होंने दुतकारा है। कुछ मुद्दे देखें :

1. गांधीजी ने पार्लियामेन्ट को हिन्द स्वराज्य में आड़े हाथों लिया है। बहुतों को यह ठीक नहीं लगा। पर्लियामेन्ट के लिए वेश्या और बांझ जैसे शब्द ज़रूर सख़्त दिखते हैं, फिर भी उन्होंने स्वीकारा है : ''आज मेरी सामुदायिक प्रवृत्ति का लक्ष्य हिन्दुस्तानी प्रजा की इच्छा के मुताबिक पार्लियामेन्ट तरीक़ों का स्वराज्य प्राप्त कराना है।'' जन शक्ति के आधार पर यह उनका मध्यमार्गी समाधान कहा जायेगा। उनका आख़िरी लक्ष्य तो है सर्वोदयी समाज रचना का; जिसमें दिखता है, हरेक के लिए स्व–राज्य, शोषण विहीन समाज रचना और अर्थशास्त्र का मानवीय चेहरा। पार्लियामेन्ट या लोकशाही, आज तक की राज्य व्यवस्थाओं में सबसे अच्छी होने पर भी अपूर्ण है। गांधीजी के विचार से अंतिम ध्येय पार्लियामेन्ट नहीं है। पार्लियामेन्ट के लिए उनके प्रयुक्त तीखे शब्द भारत की आज की पार्लियामेन्ट सच्चे होना बता रही है।

2. यंत्रों के विषय में सोचते वक़्त अपने इंग्लैंड के शिक्षा के समय युवा मोहनदास ने देखे औद्योगिक क्रांति के विघातक परिणाम और साथ में जुड़ी साम्राज्यवादी लोलुपता, उस विचारणा के आधार बने दीखते हैं। इसी के कारण रेलवे के ख़िलाफ़ ''इससे अकाल बढ़े हैं'' जैसा विधान कर दिया है। बेशक, अनेक सच्ची बात कमज़ोर तरीक़े से कही गयी हैं। 1934 में उन्होंने इसके बारे में दी हुई स्पष्टता समझ में आ सकती है। कहा था : ''मेरा विरोध यंत्रों के ख़िलाफ़ नहीं, परंतु यंत्रों के पीछे जुड़े पागलपन से हैं।'' आज समझ में आता है कि उनकी यंत्र के विरोध में कही गयी बातें ग़लत नहीं थी।

   जो यंत्र मनुष्य को बेकार बना दे, शोषण का माध्यम बने, असमानता का सर्जन करे, स्वावलंबी ग्रामसमाज को तोड़ दे, लोगों को अपने स्व के दायरे से कुंठित कर दे और उसकी सामाजिकता को हर ले, उस यंत्र का चाहे जो महिमा गाया जाये, परंतु सर्वोदय की विचारणा में उसका स्वीकार नहीं हो सकता। सर्वोदय की अपनी एक निराली परख है, जो हिन्द स्वराज्य में विस्तृत रूप से बतायी गई है।

   उपभोगों की चीज़ें और अन्य समृद्धि की उच्चतम स्थिति पर पहुंचे देशों में भी क्या भाईचारा बढ़ा है? मानसिक शांति देखी जाती है? नहीं। जो समृद्धि औरों के शोषण पर हो, भयंकर अशांति को जन्म देती है। मानस रोगों को जन्म देती है। बापू की दृष्टि में रहे इस व्यापक संदर्भ को बिना छुए, केवल उनके यंत्र विरोध को समझ नहीं जा सकता। आज विश्व संतुलित और आयोजनबद्ध टेक्नोलॉजी के विचार के प्रति मुड़ा जा रहा है। गांधीजी के विचार में उनको यह चित्र दिख रहा है। प्रश्नों का समाधान दिख रहा है।

3. गांधीजी डॉक्टर और वकील जैसे पेशे को समाज की बीमारी का चिह्न देखते हैं, तो वह उनकी विचारधारा के साथ ठीक बैठता है। प्रायः डॉक्टर बेबस रोगिओं को बेरहमी से लूटते हैं। वकील मुवक्किलों को आपस में टकराकर बेतहाशा अर्थोत्पादन करते हैं। गांधीजी के लिये ऐसा कोई भी पेशा स्वीकार्य नहीं हो सकता। रस्किन

के विचार में से चुने गये तथ्य ''वकील और नाई दोनों के काम की क़ीमत समान होनी चाहिए। क्योंकि आजीविका का हक़ दोनों के लिये बराबर है .... मज़दूर और किसान का मेहनती और सादगीपूर्ण जीवन ही सच्चा जीवन है।... सबके भले में अपना भला है''– यह विचार जिनके जीवन में प्रतिष्ठित हो, उस महात्मा के लिए डॉक्टर–वकील प्रचलित अर्थ, परिभाषा और स्थिति में क्या स्वीकार्य हो सकते हैं? इन लोगों की आमदनी के बीच का फ़र्क़ 1–10 का हो सकता है। परंतु आज यह अंतर 1 से 100 गुना, और कहीं तो 1 से 500 गुना भी चल रहा है। केवल पैसे ही कमाना इस प्रकार के पेशे की प्रेरणा रहती है, लोगों के कल्याण की नहीं। इसलिये सामाजिक विषमतावाली भेदजनक खाई गहरी बनती है। जिन पेशे की प्रेरणा नीति के बजाय मुनाफ़ा ही रहता हो, वह गांधी विचार को स्वीकार्य नहीं। वर्तमान समाज व्यवस्था में मुनाफ़े की जो प्रतिष्ठा है, उसे जड़मूल से मिटाने पर ही नई समाज रचना का कहीं आरंभ हो सकता है। मानव मुक्ति का अर्थ गांधीजी के विचार से कितने व्यापक रूप से उसकी तह को स्पर्शता है, यह समझना ज़रूरी है।

4. अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति आम समाज से विमुख रही है। श्रमिक और बौद्धिक जैसे कृत्रिम भेद की सर्जक है। कुछ अवसर प्राप्त बौद्धिकों का सभी विद्याओं पर अधिकार थोपनेवाली है। जिसने यह पायी वह स्वार्थी, शोषक और स्वकेन्द्री बनते चला है। स्वराज्य के 55 वर्ष बाद भी इनकी चंगुल से हम मुक्त नहीं हुए।

''भारत का सबसे बड़ा ख़तरे का प्रश्न आपको कौन सा लग रहा है?'' पत्रकार को इस प्रश्न के जवाब में बापू ने बीती हुई सदी के भी पूर्वार्ध काल में कहा था ''शिक्षित लोगों के हृदय की निष्ठुरता, यह भारत की सबसे बड़ी समस्या है।'' इतने वर्ष बीत जाने पर भी यह क्या सत्य नहीं रहा? 1909 (हिन्द स्वराज्य) में इस शिक्षा के प्रति प्रकट किया गया गांधीजी का पुण्य प्रकोप देश की कमनसीबी से अक्षरशः आज तक सच्चा रहा!

अंग्रेज़ी शिक्षा को उन्होंने ''हिन्दुस्तान के लिये अपनी गुलामी की जड़'' बताया था। गांधीजी की दृष्टि से साक्षरता या सच्ची शिक्षा (गुजराती केळवणी) नहीं है। जिस शिक्षा से मनुष्य प्रामाणिक और नीतिवान बनता हो, जो मानवता सिखाती हो, वही सच्ची शिक्षा है। उनकी दृष्टि से नूतन समाज रचना में आज की शिक्षा नाकाम है। शिक्षा तो वही है जो पानेवाले के मनुष्यत्व को बढ़ाती हो। मानव में से मनुष्यत्व को मिटानेवाली शिक्षा, क्या यह कोई शिक्षा है? सच्ची समाज रचना के लिये मनुष्य को कैसा गढ़ना होगा, यह उनकी दृष्टि 91 वर्ष बाद भी सामयिक प्रश्नों का भी जवाब देती है।

5. पिछले पच्चीस सालों में पर्यावरण के प्रति बढ़ी हुई जागृति ने भी गांधी विचार की ओर हमें अनायास मोड़ दिया है। भोगवादी सभ्यता के ख़िलाफ़ उन्होंने चेतावनी दी थी। अमेरिका को आदर्श मानकर सारी दुनिया अमर्याद उपभोग हेतु प्राकृतिक संपत्ति का बिगाड़ नहीं कर सकती। इस प्रगति की मर्यादा को समझना पडेगा। सोचें तो प्रगति और विकास का ख़्याल ही बदलाव मांगता है। गांधीजी के आत्मसंयम और अपरिग्रह के विचार कोई संसार विमुख या संसार द्वेषी वैरागी का नहीं, परंतु समाज के बीच जी रहे लोक कल्याण तथा विश्व कल्याण के लिये तड़पते मानव प्रेमी का है। इस पृथ्वी में हर एक के लिये जीवन यापन के आवश्यक सामान की कमी नहीं परंतु किसी

के लिये भी उसके लोभ और लालच की पूर्ति करना संभव नहीं। लोभ और असंतोष से भरकर दौड़ रही मानव जाति के प्रति बापू की यह चेतावनी है। लोभ की पूर्ति के लिये जब प्रकृति मा का दोहान किया जाय, तो मां का स्वास्थ्य ज़रूर बिगड़ेगा। पर्यावरणीय रक्षा के लिये भटके हुए मनुष्य को गांधी विचार पर ला दिया है। पर्यावरणशास्त्र की बढ़ी समझदारी ने गांधीजी के विचारों को वास्तविक और जीवनोपयोगी साधन दिये हैं। समानता, स्वातंत्र्य और बंधुता के मूल्यों को एक साथ ही सोचना पड़ेगा। इससे कोई एक के टूट–छूट जाने से समाज की नींव खंडित बनेगी। मार्क्स के दर्शन ''आख़िर में राज्य सत्ता का विलोपन होगा और समानतापूर्ण समाज बनेगा।'' को लेकर चले रूस ने सत्ता का केन्द्रीकरण और दमनकारी हिंसा के बल पर कैसा जुल्मी राज्य बनाया था, यह दुनिया ने देखा है। इसी को देखते गांधीजी की विकेन्द्रीकरण की बात को सत्ता, संपत्ति और ज्ञान–तीनों के विकेन्द्रीकरण के संदर्भ में देखना पड़ेगा। यह विचार ग्राम स्वराज्य–व्यक्तियों का पारस्परिक प्रत्यक्ष्य समाज–हर व्यक्ति के सम्मिलित बल तक विस्तरेगा।

एक बात को यहां लक्ष्य पर लेना ज़रूरी है कि गांधीजी संकीर्ण मनोवृत्तिवाले, रूढिचुस्त या मिथ्याभिमानी देशभक्त नहीं थे। किसी भी सभ्यता की अच्छी बातों को सीखने–अपनाने के लिये वे सदैव तैयार रहते थे। उनकी प्रक्रिया भी एकमार्गी नहीं रही। वे कहते थे ''आप लोगों की कुछ बातें हैं, पर हम सीखेंगे और आप को भी हमसे बहुत कुछ सीखना है, ज़रूर सीखें।'' ऐसे संबंध की नींव मुनाफ़ा, स्वार्थ या शोषण नहीं बन सकती। धर्मक्षेत्र में डाली गयी वैचारिक नींव हमें उस ओर ले जायेंगी।

इन्हीं बातों से स्पष्ट है कि गांधीविचार की प्रासंगिकता आज भी है और आनेवाले कल में और भी बढ़नेवाली है। 21वीं शती की यह अनिवार्यता बनकर रहेगी। हिन्द स्वराज्य में निरूपित गांधी विचार कोई प्रासंगिक उफान नहीं, नया युग दर्शन है। बापू की आत्मा की गहराई में से इन विचारों का जन्म हुआ था।

भारत के निर्माण का स्वप्न संजोकर इस युग की समस्याओं का समाधान ढूंढ़नेवाले हरेक विचारक के लिये, कर्मवीर के लिये हिन्द स्वराज्य उत्तम मार्गदर्शक है। 91 साल के बाद भी उसकी पारदर्शक विचारण हमें एक खुला आह्वान दे रही है।

गुजराती से भाषान्तर लाभूभाई ग. पटेल। यह लेख गांधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित पत्रिका गांधी मार्ग से साभार किया है।

भाषा : प्रकृति एवं संरचना

प्रो. राजेन्द्र सिंह, मांट्रियल विश्वविद्यालय, कनाडा से लिए गए साक्षात्कार

का

दस्तावेज़

अंग्रेज़ी और हिंदी में उपलब्ध

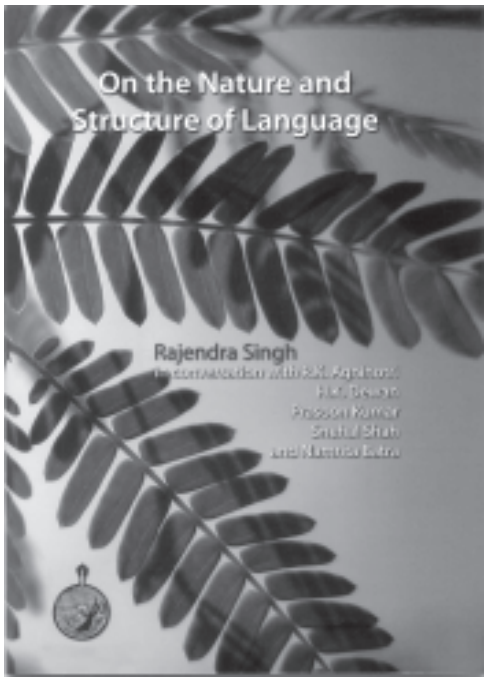

मूल्य : पचास रुपए

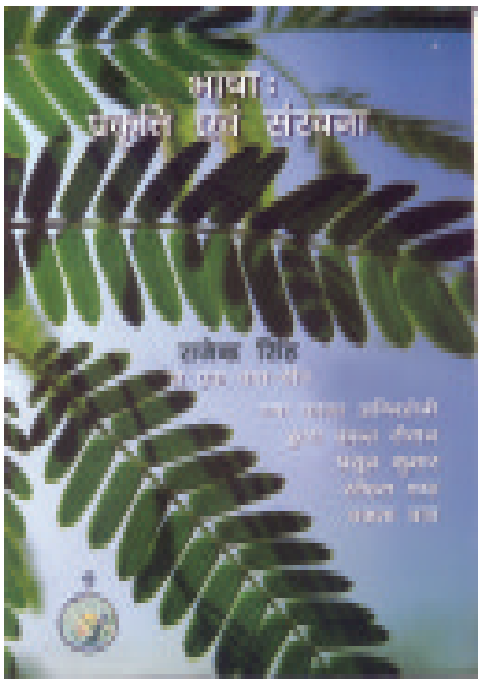

मूल्य : पचास रुपए

चैक/ड्राफ़्ट विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर (राज.) के नाम से बनवाएं।

संपर्क करें :

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

बुनियादी शिक्षा के विभिन्न आयामों पर राष्ट्रीय सेमीनार

विचार पत्र

3–5 नवंबर 2009

लगभग 2 वर्ष पूर्व मार्च 2007 की राष्ट्रीय संगोष्ठी में हमने बुनियादी शिक्षा और उसकी वर्तमान विद्यालयी शिक्षा व्यवस्था में संभव होने वाली क्रियान्विति पर चर्चाएं की थीं। इस चर्चा में कई विचार निकलकर सामने आए थे। इसमें कुछ संभावनाओं को तलाशा गया था। इस सफ़र को जारी रखना आवश्यक है। शिक्षा को अधिक प्रासंगिक और रुचिकर बनाने के लिए, उसमें नए विचारों को शामिल करने और उसकी मान्यता (स्वीकार्यता) को बढ़ाने की हर जगह जरूरत अभी–भी महसूस की जा रही है। हाल ही में एनसीईआरटी के द्वारा ''भाषा समझ का माध्यम'' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गयी थी। इन संगोष्ठियों में कई महत्त्वपूर्ण व रुचिकर मुद्दों को उठाया गया था और साथ ही बुनियादी शिक्षा के कुछ केन्द्रीय सिद्धान्तों और तत्त्वों को परोक्षरूप से दोहराया गया था व उन पर बल दिया गया था। यह एकदम स्पष्ट था कि एक बार जब हम बच्चे की भाषा को स्वीकार कर लेते हैं तो हम उसके जीवन के अनुभवों को, उसके आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य व पृष्ठभूमि को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते।

भारत की आज़ादी की जागरूकता से उभरी सरगर्मी के समय से ही बुनियादी शिक्षा के शैक्षिक विचार के तत्त्वों का आधारशिला के रूप में उदय हो चुका था। इन चर्चाओं में इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया था कि बच्चे की भाषा के उपयोग से उसका अवधारणात्मक विकास और अभिव्यक्त विचार पैने व धारदार बनते है। विद्यार्थियों की भाषा का उपयोग यदि इज़्ज़त व उपयुक्त प्रयोजन के साथ होता है तो वह उनकी सभी योग्यताओं को अधिक विकसित करती है। भाषा एक संपूर्ण आत्मविश्वासी व संतुलित व्यक्ति बनने में मदद करती है।

करके सीखना, पता करते–करते सीखना और खोजकर सीखने के विचार का भिन्न–भिन्न तरीक़े से विकास हुआ। एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और प्राशिका कार्यक्रम का प्रयास ऐसे मुख्य उदाहरण हैं जो कि वैकल्पिक रूप से बच्चों की अपेक्षाओं को तर्कपूर्ण ढंग से परिभाषित करते हैं। यहां तक कि ये मूल्यांकन की प्रक्रिया को भी परिभाषित करते हैं। कुछ इसी तरह का प्रयास एकलव्य की सामाजिक अध्ययन की पुस्तक में भी हुआ है।

प्राशिका कार्यक्रम ने पाठ्यक्रम को पुनः परिभाषित किया तथा शिक्षकों की तैयार के लिए एक रणनीति बनाई। इसके अलावा देश में बहुत से प्रयास शिशु मिलाप, संपर्क, दिगन्तर, संधान, कई राज्य सरकारें, एनसीएफ – 2005 व एनसीईआरटी की किताबें आदि कई प्रयासों में इसकी महती झलक मिलती है। वर्तमान में कुछ निजी विद्यालय भी बच्चों की अर्थपूर्ण शिक्षा के बारे में सोच रहे हैं और इनमें से कुछ ने बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में प्रयास प्रारम्भ कर दिए हैं।

अब बहुत से लोग अर्थपूर्ण शिक्षा के बारे में सोच रहे हैं तथा आगे बढ़ने के रास्ते तलाश रहे हैं। कुछ वर्षों पूर्व छत्तीसगढ़ राज्य सरकार ने बुनियादी शिक्षा पर एक नीति तैयार की थी तथा बिहार राज्य सरकार ने भी बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम को मान्यता प्रदान की है और ''सामान्य विद्यालयों'' का एक दस्तावेज़ तैयार किया है। पर यह सब व्यवस्थित रूप से संयोजित होकर आगे नहीं बढ़ पा रहा। हम चाहते हैं कि अभी तक के अनुभवों से उभरते हुए रास्तों पर चर्चा करें व उनके इस्तेमाल में क्या अड़चनें हैं उनको समझते हुए आगे कैसे बढ़ सकते हैं, यह सोचें।

सेमीनार में चर्चा को हमने 4 सत्रों में बांटा है। ये सत्र हैं–

1. मातृभाषा और बुनियादी शिक्षा
2. काम और शिक्षा का संबंध व सामाजिक ज़िम्मेदारी
3. बुनियादी शिक्षा और निर्माणवाद
4. बुनियादी शिक्षा व शिक्षक प्रशिक्षण

गांधीजी द्वारा जिन विचारों, संतोष, शांति, संरक्षण, विकेन्द्रीकरण व स्वायतता को महत्त्व दिया गया था वे सभी इन सब विषयों की पृष्ठभूमि में रहेंगे ही। हमारी योजना इस सेमीनार को दिनांक 3 से 5 नवम्बर 2009 को आयोजित करने की है।

हम यह आशा व गुज़ारिश करते हैं कि आप जिस मुद्दे पर अपना पत्र प्रस्तुत करना चाहते हैं, उसका सार संक्षेप ई–मेल के द्वारा या उसकी लिखित कॉपी डाक से हमें भेज दें।

हम यह भी आशा करते हैं कि आप इसे उन लोगों के साथ भी बांटेंगे जो अपना अमूल्य योगदान इस सेमीनार में देने की रुचि रखते हैं। यह सेमीनार एक बार पुनः इन विचारों से हम क्या सीख सकते है का विश्लेषण करने और शिक्षा की एक गहरी समझ सृजित करने का अवसर प्रदान करेगा, ऐसी उम्मीद करते हैं।

भागचन्द्र कुमावत
संयोजक
बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश
विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर

हृदयकांत दीवान
शैक्षिक सलाहकार
विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर

संपर्क : Email : vbsudr@yahoo.com, Ph. No. 0294-2451497

पुनश्चः – हमने साथियों को लिखे पत्र में सेमीनार की तिथियां 26 से 28 सितम्बर 2009 प्रस्तावित की थी। इन तिथियों में बदलाव किया जा रहा है। अब सेमीनार का आयोजन 3–5 नवम्बर 2009 को होगा।

विज्ञान शिक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार

का

दस्तावेज़

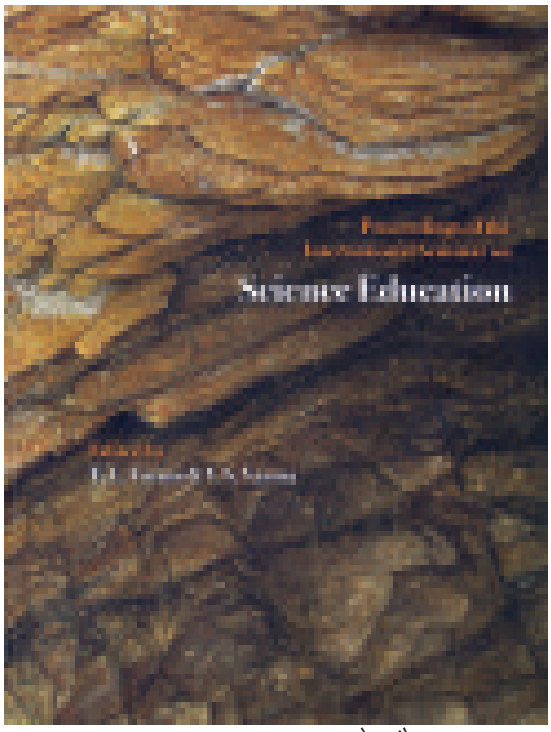

मूल्य : दो सौ पचास रुपए

(हिन्दी में शीघ्र प्रकाश्य)

संपर्क करें

विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहन सिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

फिर से हिन्द स्वराज्य

★ कनक तिवारी

ऐसा लगता है कि गांधी एक घटना की तरह पैदा हो गये और अस्सी वर्ष के लम्बे जीवन में लगातार विद्रोह करते–करते उल्कापात की तरह गिरे। गांधी भारत की आधी बीसवीं सदी का पर्याय रहे हैं। उसके पूर्वार्द्ध के कम से कम आख़िरी तीस वर्ष लिहाफ़ की तरह हिन्दुस्तान के सियासी, बौद्धिक और सामाजिक जीवन को गांधी ही ओढ़े रहे। यह व्यक्ति अन्तर्राष्ट्रीय इतिहास का एक फेनोमेना है जिसको समझने की कोशिश करना धुएं को अपनी बाहों में भरना है।

1909 में लंदन से दक्षिण अफ्रीका लौटते हुए पानी के जहाज़ पर सम्पादक पाठक संवाद के रूप में गांधी ने एक कालजयी कृति लिखी। उस समय के हिन्दुस्तानियों के हिंसावादी पंथ और उसी विचारधारावाले दक्षिण अफ्रीका के एक वर्ग को दिये गए कथित जवाब में लिखी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' है। यह एक लेखमाला के रूप में 'इण्डियन ओपिनियन' नामक पत्र में गुजराती में दक्षिण अफ्रीका में प्रकाशित हुई। दरअसल मुकम्मिल आज़ादी की कल्पना के पहले गांधी ने 1891 से 1894 के बीच दक्षिण अफ्रीका में रहनेवाले भारतीयों की तरह से लिखी गई कई याचिकाओं में आज़ादी का ख़ुद के विचार का खाका खींचा था। हो सकता है 'हिन्द स्वराज्य' उसका संशोधित रूप हो। इस पुस्तक के भारत में गुजराती संस्करण के प्रकाशित होते ही बम्बई में ब्रिटिश सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। जवाहरलाल नेहरू ने बाद में इस किताब में व्यक्त विचारों को भ्रम पैदा करनेवाले और अव्यावहारिक कहकर उससे असहमति व्यक्त की थी। लेकिन गांधी ने स्वयं गुजराती 'हिन्द स्वराज्य' का अंग्रेज़ी अनुवाद किया और प्रकाशित कराया। उसे भी ब्रिटिश सरकार ने आपत्तिजनक बताकर ज़ब्त कर लिया। 1915 में महात्मा गांधी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे तो उन्होंने सबसे पहले 'हिन्द स्वराज्य' को फिर से प्रकाशित करवाया। तब सरकार ने इसे ज़ब्त नहीं किया। 'हिन्द स्वराज्य' को गांधी ने आधुनिक सभ्यता की समालोचना के रूप में प्रचारित किया था। उन्होंने लगातार यही कहा कि कि पश्चिमी सभ्यता के संबंध में मेरे मूलभूत विचार यही हैं जो इस पुस्तक में उन्होंने व्यक्त किये हैं। उन्होंने साफ़ कहा था कि ''यह किताब ऐसी है कि यह बालक के हाथ में भी दी जा सकती है। यह द्वेष–धर्म की जगह प्रेम–धर्म सिखाती है। हिंसा की जगह आत्मबलिदान को रखती है। यह पशुबल से टक्कर लेने के लिए आत्मबल को खड़ा करती है।'' 'हिन्द स्वराज्य' में भारतीय स्वतंत्रता का जनपथ विस्तृत है। आज़ादी के साठ वर्ष बाद जब हम इस किताब के माध्यम से संघर्षशील हिन्दुस्तान की आज़ादी की जिद्दोजहद को देखते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि महापुरुषों की भीड़ में गांधी ध्रुवतारे की तरह अकेले निर्विकार लेकिन हठधर्मी मुद्रा में मील का पत्थर बनकर खड़े हैं। कम के कम आज़ादी के मिलने के तीस बरस पहले से गांधी और हिन्दुस्तान एक–दूसरे के समानार्थी रहे हैं, इस निष्कलंक कृति के माध्यम से गांधी ने आज़ादी की लड़ाई के सभी योद्धाओं से अलग हटकर कुछ

बुनियादी सवाल हमारी चेतना की छाती पर छितराये हैं। ये सवाल आज भी वैसे ही मुंह बाए खड़े हैं। 'हिन्द स्वराज्य' महात्मा गांधी के नैतिक और राजनीतिक विचार ऊर्ध्व का भी शिखर है जिसकी बुनियाद (तत्कालीन) आधुनिक सभ्यता की कठोर समीक्षा में है। लगभग बौद्धिक प्रतिहिंसा की शक्ल में गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में पुस्तिका का अंग्रेज़ी संस्करण भी प्रकाशित कराया। उन्होंने एक प्रति तॉल्सतॉय को भी भेजी। 20 अप्रैल 1910 को अपनी डायरी में तॉल्सतॉय ने लिखा ''आज सभ्यता के बारे में गांधी को पढ़ा। अद्भुत है।''

जिन गोखले को गांधी अपना राजनीतिक गुरु कहते थे, उन्होंने 1912 में ही 'हिन्द स्वराज्य' को हडबड़ी में लिखी गई भोंडी किताब करार देते हुए यही कहा कि आगे चलकर गांधी इसे ख़ुद ख़ारिज़ कर देंगे। नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित 'हिन्द स्वराज्य' की भूमिका में महादेव देसाई ने लिखा था। ''गोखलेजी 1912 में जब दक्षिण अफ्रीका गये, तब उन्होंने वह अनुवाद देखा। उन्हें उसका मजमून इतना अनगढ़ लगा और उसके विचार ऐसे जल्दबाजी में बने हुए लगे कि उन्होंने भविष्यवाणी की कि गांधीजी एक साल भारत में रहने के बाद ख़ुद ही पुस्तक का नाश कर देंगे। ''लेकिन अपने विचारों को दिन प्रतिदिन के आधार पर उत्तरोत्तर विकसित करनेवाले महात्मा गांधी ने आश्चर्यजनक रूप से वर्षों बाद भी 'हिन्द स्वराज्य' के पाठ को संशोधित तक नहीं किया। सिवाय इसके कि 'बेसवा' (वेश्या) नामक शब्द को उन्होंने अपनी एक अंग्रेज़ महिला मित्र (शायद एनी बेसेंट) के कहने पर हटाने की सहमति दी थी। ''इसकी अनेक आवृत्तियां हो चुकी हैं, और जिन्हें इसे पढ़ने की परवाह है उनसे इसे पढ़ने की मैं ज़रूर सिफ़ारिश करूंगा। इसमें से मैंने सिर्फ़ एक ही शब्द और वह एक महिला मित्र की इच्छा को मानकर रद्द किया है; इसके सिवा और कोई फेरबदल मैंने इसमें नहीं किया है।''

1938 में प्रसिद्ध अंग्रेज़ विद्वान मिडिलटन मरे ने इस कृति को एक आध्यात्मिक क्लासिक करार देते हुए उसे आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक घोषित किया। लार्ड लोथियान ने कहा ''यही वह पुस्तक है जिसमें पूरा गांधीवाद छन–छनकर उतर गया है।'' 'इंडियन ओपिनियन' के गुजराती पाठकों के लिए 'हिन्द स्वराज्य' एक भूचाल की तरह था क्योंकि उसकी भाषा बेलाग और तर्क बेहद धारदार थे। पुस्तक के लिखने के दो वर्ष पूर्व ही गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में निष्क्रिय प्रतिरोध का आंदोलन शुरू किया था। वह आंदोलन मोहनदास गांधी के आंतरिक व्यक्तित्व में उठ रहे ज्वालामुखी के प्राथमिक संकेतों, संवेगों की तरह था। 'हिन्द स्वराज्य' गांधी के राजनीतिक अस्तित्व का पहला पुख़्ता और विश्वसनीय पड़ाव था।

'हिन्द स्वराज्य' साम्राज्यवादी मान्यताओं के परखचे उखाड़ने की एक ऐसी आधुनिक मानव मशीन का उत्पाद है, जो मशीन को मानव के लिए बेहद ग़ैर ज़रूरी मानता हो, जब तक कि उसका मशीनों पर कोई निर्णयात्मक नियंत्रण नहीं हो। अंगरेज़ी भाषा का कम्युनिकेशन (प्रेषण) में इस्तेमाल करने में गांधी को (मातृभाषा गुजराती में लेकिन ज़्यादा) इसलिए महारत हासिल होती जा रही थी क्योंकि 'आधी गुप्त, आधी प्रकट शैली' के छद्म इस भाषा में बहुत हैं। शायद इसलिए भी गांधी कहते हैं कि इस पुस्तक में वर्णित विचार उनके हैं भी और नहीं भी। वे इसलिए उनके हैं क्योंकि गांधी उनके अनुरूप आचरण करना चाहते हैं। इसलिए वे उनके जीवन का अंग भी हैं। वे विचार गांधी के नहीं भी हैं क्योंकि गांधी मौलिकता का दावा नहीं करते। गांधी कहते हैं ''जो विचार यहां रखे गए हैं, वे मेरे हैं और मेरे नहीं भी हैं, वे मेरे हैं, क्योंकि उनके मुताबिक़

बरतने की मैं उम्मीद रखता हूं; वे मेरी आत्मा में गढ़े–जड़े जैसे हैं। वे मेरे नहीं हैं, क्योंकि सिर्फ़ मैंने ही उन्हें सोचा हो तो बात नहीं। कुछ किताबें पढ़ने के बाद वे बने हैं। दिल में भीतर ही भीतर मैं जो महसूस करता था, उसका इन किताबों ने समर्थन किया।''

'हिन्द स्वराज्य' की भूमिका में गांधी ने बेलाग होकर स्वीकार किया है कि यद्यपि कृति में उनके विचार हैं, फिर भी वे मौलिकता का दावा नहीं करते। गांधी के अनुसार भारतीय दर्शन के अतिरिक्त तॉल्सतॉय, रस्किन, थोरो और एमर्सन जैसे लेखकों का उन पर गहरा असर रहा है। तॉल्सतॉय को तो उन्होंने अपना गुरु ही घोषित किया है। उन्होंने लिखा कि पुस्तक को पढ़ते वक़्त पाठक को इन महान् लेखकों की कृतियों को व्यक्त विचारों में समानता नज़र आएगी। श्लेष, यमक और अन्योक्ति जैसे अलंकारों की छटा बिखेरते हुए गांधी ने कहा कि पुस्तक में उनके विचार इस अर्थ में हैं कि वे उन पर आचरण करेंगे। ये इस अर्थ में उनके नहीं भी हैं क्योंकि वे विचार मौलिक नहीं हैं बल्कि कई महान् लेखकों की अनेक पुस्तकों को पढ़ने के बाद सूत्रबद्ध हुए हैं।

गांधी को यह आत्मविश्वास था कि भारत में ऐसे बहुतेरे लोग होंगे, जो उनके विचारों से इत्तफ़ाक़ रखते होंगे और उन्हें मौजूदा पश्चिमी सभ्यता से कोफ़्त होगी। उन्होंने यह भी कहा कि भारत ही क्यों यूरोप में ही हज़ारों ऐसे लोग हैं जिन्हें पश्चिमी सभ्यता के घातक तेवरों से पूरी तौर पर परहेज है। करोड़ों हिन्दुस्तानी और लाखों यूरोपीय वे बौद्धिक मतदाता थे जिनके वैचारिक निर्वाचन क्षेत्र में जाने से गांधी अपने चुने जाने के प्रति आश्वस्त थे ही, अपने प्रभाव क्षेत्र को इन प्राथमिक और बुनियादी वैचारिक मतदाताओं के समर्थन से बढ़ाना भी जानते थे। यहां पर गांधी अपने तेज़ दिमाग़ के सयानेपन का भी इस्तेमाल करते हैं। वे तत्कालीन यूरोप की जनता और पश्चिमी सभ्यता के रसूखदार शासकों में भेद करते हैं। गांधी जानते थे कि ब्रिटेन के उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद तथा रूस की जारशाही की धमाचौकड़ी में जॉन रस्किन और तॉल्सतॉय जैसे विचारकों की आवाज़ तूती की तरह बना दी गई है, जबकि ऐसे मानस–पुत्र ही यूरोपीय सभ्यता के वास्तविक प्रज्ञा–पुरुष हैं। इसलिए आधुनिक सभ्यता के ख़िलाफ़ संघर्ष का गांधी–आव्हान केवल एक भारतीय की मौलिक चुनौती नहीं है, बल्कि यह यूरोप के प्रसिद्ध विचारकों के चिंतन–निचोड़ पर आधारित भारतीय शैली में पगी हुई बौद्धिक रणनीति का कायिक प्रदर्शन है। यह कूटनीति किसी लोकप्रिय नेता के कार्यालय के टकसाल में गढ़ा हुआ सिक्का नहीं था बल्कि उसे मोहनदास करमचंद गांधी जैसे कद्दावर काठी के बौद्धिक नेता की आत्मा की धमन भट्टी में पकाकर मूल्य–युद्ध में इस्तेमाल किया गया था।

परिशिष्ट में संदर्भित तॉल्सतॉय की 4, थोरो की 2 और रस्किन, प्लेटो तथा मैजिनी की एक–एक किताब में भारतीय जनजीवन का कोई विवरण या वर्णन नहीं है, ऐसे में भी जो विमर्श गांधी उपस्थित करते हैं, वह मनुष्यमात्र की समस्याओं के लिए उपजता है, केवल भारत के लिए नहीं, यह ज़रूर है कि गांधी रमेशचन्द्र दत्त की 'इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया'', हेनरी मेन की 'विलेज कम्युनिटीज' और एडवर्ड कारपेन्टर की 'सिविलाइजेशन : इट्स कॉज़ एण्ड क्योर' को भी संदर्भित करते हैं, जिनसे भारतीय समस्याओं को बूझने में गांधी को मदद मिली है।

तॉल्सतॉय ने उन्हें कुंजी दी थी कि लेखक का मक़सद होना चाहिए कि हम कैस जिएं, इस साधारण से वाक्य में बीजगणित का जो सूत्र है, उसे ही गांधी ने धरती को उर्वर कोख का बीज बनाकर एक वैचारिक वटवृक्ष दुनिया के हवाले किया। इसलिए

'हिन्द स्वराज्य' को केवल भारतीय समस्याओं के संदर्भ का एक राष्ट्रीय दस्तावेज़ करार दिए जाने से गांधी सबसे महान् आधुनिक भारतीय नियामक के रूप में भले ही पेटेंट कर दिए जाएं, लेकिन उससे 'हिन्द स्वराज्य' की हेठी होती है। विचार फ़लक पर यह पुस्तक नई दुनिया की नई बाइबिल की तरह नैतिक शक्ति का बहुत बड़ा ग्रन्थ हैं।

'हिन्द स्वराज्य' हिंसक क्रांतियों के प्रस्तोताओं और प्रवक्ताओं को दिया गया अहिंसक ढांचे का उत्तर मात्र नहीं है और न ही वह गांधी के द्वारा चुनिंदा पढ़ी गई किताबों की शिक्षाओं के निचोड़ का अंगीकार दर्शन है। पुस्तक के क्रमिक विकास के साथ साथ गांधी में दक्षिण अफ्रीका प्रवास के पिछले चौदह वर्षों के संघर्ष के धरातल पर खड़े होकर उस प्रखर तार्किक दर्शन के कंटूर उगने लगते हैं, जो आगे चलकर पूरी पश्चिमी सभ्यता को जड़ से उखाड़ फेंकने का पूरी दुनिया में सबसे व्यापक और महत्त्वपूर्ण आव्हान करता है, एक ऐसा आव्हान जो उन करोड़ों कंठों का नित्य गायन है, जो उस सभ्यता के दंश से पराजित होने के बावजूद शायद क्लैव्य की मुद्रा में मर जाते यदि गांधी दुनिया में नहीं आते।

गांधी को महसूस हुआ कि आधुनिक सभ्यता की चकाचौंध के नीचे एक त्रासदी छिपी हुई है। उन्होंने कहा कि पूंजीवादी प्रवृतियों की अंधी दौड़ में सब कुछ व्यतीत कर उसे पूरी तौर पर भुला दिया जाता है। विज्ञान की तरक़्क़ी और सभ्यता की उपलब्धियों वग़ैरह से संघर्षरत मानवता को कुछ भी हासिल होनेवाला नहीं है। गांधी के निष्कर्ष उनके पूर्ववर्ती यूरोपीय विचारकों से प्रभावित होने के बावजूद काफ़ी अलग और मौलिक भी थे। वे कहते थे– हम सब इस धरती पर यायावर तीर्थयात्रियों की तरह हैं। हम अनंत आत्माएं हैं परन्तु जीवन की परिवीक्षा अवधि में हैं। इसलिए जो कुछ अस्थायी है, उसके उत्कर्ष का कोई भी सफल सिद्धान्त स्थायित्व के समीकरण को बूझने में असमर्थ होगा।

'हिन्द स्वराज्य' वह बीज है जिसने गांधी का विचार–वृक्ष धरती की छाती पर उगाया। उनके विचार–दर्शन को बूझने के लिए इस पुस्तक के प्रस्थान बिंदु को समझ लेने से पाठक को भटकाव नहीं होता क्योंकि गांधी–दर्शन की बुनियाद वाकई इसी पुस्तक में है। इसलिए वे सभी तत्त्व इस पुस्तक में छितराए हुए हैं, जो अलग–अलग भी अपने पोषक के विचार दर्शन के अलग अलग वृक्षों की तरह भी विकसित कहे जा सकते हैं।

शोधकर्ता यदि गांधी चिंतन के व्यवस्थित और क्रमिक ढंग से विवेचित करना चाहें, तो उन्हें गांधी पाठशाला के इस प्राथमिक ड्राफ़्ट से गुजरना ज़रूरी होगा। यह कृति किसी तरह 'आत्मकथा' से निम्नतर या कम उपादेय रचना नहीं है बल्कि वैचारिक स्तर पर उसकी पूर्ववर्ती होने के नाते ज़्यादा मौलिक है, भले ही यहां सब कुछ सूत्र रूप में आबद्ध है। जिस तरह रामकृष्ण देव के आध्यात्मिक सूत्रों को विवेकानंद ने सांस्कृतिक दुनिया में तब्दील कर दिया, वैसा ही गांधी ने 'आत्मकथा' सहित अपने बाक़ी लेखन में 'हिन्द स्वराज्य' का ही विस्तार और प्रक्षेपण किया।

इस कृति को पढ़ने से गांधी वाङ्मय की बहुत सी समीक्षाओं को पढ़ने और समझने में भी मदद मिलती हैं। यह पुस्तक एक साथ इतनी सरल और जटिल है कि इसके विरोधाभास को समझने में दुनिया की कई पीढ़ियां व्यतीत हो गईं और शोध अब भी जारी है। गांधी ने अपनी किताब को निर्दोष कहा था। वह निर्दोष तो है लेकिन निर्दोष को पढ़ना और समझना दोषी व्यक्ति की अपराध विवरणिका को पढ़ने से ज़्यादा कठिन होता है। इसीलिए 'हिन्द स्वराज्य' की तुलना रूसो के 'सोशल कांट्रैक्ट', सेंट इग्नेसियस लोयोला की 'स्पिरिचुअल एक्सरसाइजेज' और बाइबिल में सेंट मैथ्यू और सेंट ल्यूक के कथनों से की गई है।

यह लेख इंटरनेट से साभार।

रपट

बुनियादी छात्रों के साथ अनुभव

★ विक्रमसिंह अमरावत

गत वर्ष कोसी नदी की बाढ़ ने बिहार में जो विनाश किया उससे कोई अनभिज्ञ नहीं। जैसा कि हमारे हाथ में है, हम प्रकृति के प्रकोप के बाद मात्र राहत कार्य कर सकते हैं, हमने वो शुरू किए। इसी संदर्भ में गूजरात विद्यापीठ ने भी अपने योगदान के रूप में लगभग चार माह का वृहत् राहत कार्य का कार्यक्रम बनाया। यह तय किया गया कि बीस–बीस दिन के लिए विद्यापीठ से अलग–अलग दल बिहार जाएंगे एवं विभिन्न प्रवृत्तियों द्वारा राहत एवं पुनर्वास का कार्य करेंगे। इसी कड़ी में दिनांक 23 मार्च को बीस विद्यार्थियों की टीम सुबह पटना और 26 मार्च को सुबह प्रतापगंज पहुंची। वहां से लगभग पांच किलोमीटर दूर मधुबनी गांव में एक सरकारी विद्यालय में दल का ठहराव निश्चित था। दिनांक 26 मार्च से 8 अप्रैल तक इस दल को मधुबनी एवं इसके आसपास के अन्य तीन गांवों में राहत एवं पुनर्वास कार्य की अपनी योजना को अंजाम देना था। इस दल की विशेषता यह थी कि यह गांववालों को स्वरोज़गार के संदर्भ में अगरबत्ती एवं मोमबत्ती बनाना सिखाएगा, जिससे रोज़गार की समस्या का समाधान होगा और पुनर्वास के प्रश्न को हल करने में मदद करेगा।

मैं इस दल के साथ 25 मार्च से 31 मार्च तक रहा। इस दल के सथ मेरा विशिष्ट अनुभव रहा वो बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में है। सभी बीस विद्यापीठ के सादरा परिसर में बी.ए. प्रथम एवं द्वितीय वर्ष में अध्ययनरत हैं। इन विद्यार्थियों की इससे पूर्व भी शिक्षा गुजरात के बुनियादी विद्यालयों में ही हुई।

प्रारम्भ से ही बुनियादी शिक्षा में अध्ययनरत रहे ये विद्यार्थी सामान्य प्रवाह शिक्षण के विद्यार्थियों से कई संदर्भों में भिन्नता लिए हुए थे। एक सप्ताह में इन बच्चों के साथ मुझे जो अनुभव हुए वो बुनियादी शिक्षा को एवं विशेष रूप से इसके व्यावहारिक पक्ष को समझने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

हमको मधुबनी एवं उसके आसपास के अन्य तीन गांवों में जाकर लोगों को अगरबत्ती एवं मोमबत्ती बनाने का प्रशिक्षण देना था एवं उन्हें अपने ही गांव में शिक्षा, स्वास्थ्य एवं सफ़ाई के संदर्भ में जागरूकता का कार्य करना था। इसके लिए हमने चार दल गठित किए। दो दलों को शिविर स्थल पर ही रहकर विद्यालय परिसर एवं आसपास की सफ़ाई, विद्यालय में आनेवाले बच्चों के साथ विभिन्न शैक्षिक प्रवृत्तियां एवं शिविरार्थियों के लिए भोजनादि की व्यवस्था करना था। अन्य दो दलों को गांवों में जाकर रोजगारोन्मुख शिक्षा का कार्य करना था। इन बच्चों को शिविर में आने से पूर्व मात्र अगरबत्ती एवं मोमबत्ती बनाने का प्रशिक्षण दिया गया, इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार कोई औपचारिक प्रशिक्षण नहीं दिया गया, फिर भी सभी अपने–अपने कार्य को सहजता से एवं पूर्ण सामर्थ्य से करते थे। सामान्यतः इस वय के बच्चों के लिए यह असहज होता है, लेकिन इन बच्चों के लिए यह सहज था कि सुबह पांच बजे गांव में प्रभातभेरी निकालना और

★ नई तालीम प्रोजेक्ट, गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद से जुड़े हैं।

स्वप्ररेणा से अलग–अलग भजन और गांधी–गीत गाना। यह प्रवृत्ति बहुत ही आनन्द से करते थे एवं इसके लिए किसी विशेष निर्देशन की आवश्यकता नहीं होती थी। वापस आकर स्नानादि से निवृत्त हो स्वतः ही अपने–अपने कार्य के लिए तैयार हो जाते थे। किसी को भी उसका कार्य बार–बार याद दिलाने की आवश्यकता नहीं थी। सारा कार्य इतनी ज़िम्मेदारी से होता था कि मानो यह उनके रोज़मर्रा का काम है और उनकी इसके प्रति पूर्ण ज़िम्मेदारी बनती है। मज़े की बात यह थी कि इन चारों दलों के कार्य प्रतिदिन आपस में बदलते रहते थे। जिससे कि कार्यभार स्थानान्तरण एवं उसके प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास हो सके। यह परिवर्तन भी सहजता से अंगीकार कर लिया जाता था। वास्तव में यह बुनियादी शिक्षा के मूल तत्त्व समूह जीवन में स्वावलम्बन के कारण इतनी सहजता से संभव हो सके थे। अपने शिक्षण के दौरान इस प्रकार की प्रवृत्तियों को व्यवहार में लाना, इन बच्चों ने सीखा।

जो दल गांवों में जाकर रोज़गारोन्मुख कार्य का प्रशिक्षण देने का कार्य करते थे, उनका कार्य भी बुनियादी शिक्षण के संदर्भ में अपनी विशिष्ट छाप छोड़ता था। हम बिहार के जिस क्षेत्र में थे वे वहां स्थानीय भाषा हम लोगों के लिए सहज बोधगम्य नहीं थी। यही स्थिति गांववालों के साथ थी, वे भी हमारी भाषा को सहजता से नहीं समझ पाते थे, यद्यपि वहां स्थानीय को–ओर्डिनेटर भी थे, तथापि सम्प्रेषण एक बड़ी समस्या थी। हमारे लड़कों को हिन्दी का ज्ञान काम चलाऊ स्तर तक ही था। इन समस्याओं के चलते भी उन्होंने (बच्चों ने) अपने उत्साह एवं व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर जल्द ही गांववालों से इतने सहज संबंध विकसित कर लिए कि भाषाई समस्या गौण हो गई। साथ ही अपने काम के कुछ तकनीकी शब्दों को सीख लिया, जिससे कोई तकनीकी समस्या ना आए। ग्रामीण संस्कृति के प्रति इस व्यावहारिक समझ का विकास वास्तव में बुनियादी शिक्षण का ही परिणाम है। रोज़गार एवं पुनर्वास के लिए जागरूकता पैदा करने के लिए जब वे गांववालों के साथ चर्चा करते थे तब उनके तार्किक ज्ञान का आभास होता था और यह स्पष्ट लगता था कि यह सब उन्होंने पुस्तकों से पढ़कर तो नहीं लिया है, यह उनके जीवन का अनिवार्य हिस्सा था, जो उनकी उस शिक्षण व्यवस्था द्वारा आया था जो उन पर बोझ की तरह लादी नहीं गई, जबकि उनके व्यवहार रूप में परिणत की गई थी।

इस प्रकार सात दिनों में इन बच्चों की कार्यशैली एवं उनके दैनिक कार्य आयोजनों को मैंने गहनता से देखा और उनको बुनियादी शिक्षा की दृष्टि से देखने का प्रयास किया। यद्यपि उनके कई अन्य आयाम भी हैं, लेकिन बुनियादी शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष एवं वर्तमान संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता के संदर्भ में यह सात दिन बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए।

रपट

खुली हवा में सीखने–सिखाने की पहल

विद्या भवन सोसायटी के तहत नवगठित गांधी शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय के पूर्व सेवाकालीन छात्रों का शैक्षणिक शिविर बांसवाड़ा ज़िले के खड़गदा में दिनांक 17 से 22 मार्च 2009 तक आयोजित किया गया। इस आयोजन का मक़सद प्रशिक्षणरत छात्राध्यापकों को खुले परिवेश में सीखने–सिखाने के अवसर उपलब्ध कराना है। इसके साथ ही यह समझ विकसित करना कि समुदाय से कैसे शिक्षा प्राप्त की जा सकती है ताकि वे जब स्कूलों में शिक्षण कार्य करें तो बच्चों को समुदाय की भागीदारी और समाज के साथ तालमेल बिठाते हुए शिक्षा का पाठ पढ़ा सके।

गांधी महाविद्यालय के तकरीबन 110 छात्र–छात्राएं और शिक्षक प्रशिक्षक ने पांच दिनों तक खड़गदा

क्षेत्र में रहकर वहां की सामजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक, पर्यावरणीय और राजनैतिक हालातों को समझने का प्रयास किया। खड़गदा की स्थानीय परिस्थितियों को समझने के लिए प्रश्नावली (टूल) बनाई जिनके आधार पर छात्रों ने जानकारियां एकत्र कर उनका विश्लेषण कर विमर्श किया गया।

प्रचलित कक्षाओं के उलट यहां छात्राध्यापक और शिक्षक खुली हवा में सांस ले रहे थे। न कोई कक्षा का दबाव, जैसा कि संस्थानों में होता है और न ही कोई दिखावा। शिक्षा में सामूहिकता की बातें काफ़ी होती हैं, मगर समूह जीवन कैसे जिया जाता है, समझ को कैसे साझा किया जाता है, ऐसी कई सारी चीज़ें कमोबेश सैद्धांतिक तौर पर कक्षाओं की चर्चाओं से आगे नहीं बढ़ पाती। इस लिहाज़ से इस शिविर के माध्यम से समाज की वास्तविकताओं से रूबरू होने में का एक अवसर प्राप्त हुआ।

एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य यह कि आजकल अक्सर शैक्षिक शिविरों के नाम पर वह सब कुछ नहीं हो पाता जिसकी दरकार होती है। शैक्षिक शिविरों में जहां घूमना–फिरना और आनंद शामिल है वहीं पर उसकी पाठ्यचर्या भी इस तरह से विकसित की जाने की ज़रूरत है ताकि सही मायनों में शैक्षिक दृष्टि से सार्थक सीखा जा सके।

विद्या भवन गांधी शिक्षा महाविद्यालय द्वारा आयोजित इस शिविर में छात्राध्यापकों के लिए सीखने–सिखाने का एक सार्थक प्रयास है। शिविर आयोजन के पहले शिक्षक प्रशिक्षकों ने इस पर विमर्श किया कि वहां की परिस्थितियों को समझने के लिए प्रश्नावलियां बनाई जाएं। इस लिहाज़ से शिविर की समग्र रूपरेखा तैयार की गई। जो रूपरेखा बनाई गई वह स्कूल या महाविद्यालय के विषयों में बंटी हुई न होकर सामाजिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, भौगोलिक मसलों पर अधारित थी। अध्ययन के क्षेत्र इस प्रकार हैं–

1. पर्यावरण अध्ययन
2. सामुदायिकता का अध्ययन
3. संस्कृति का अध्ययन
4. जीविकोपार्जन का अध्ययन

इन सभी चारों क्षेत्रों के अध्ययन का आधार खड़गदा के आसपास के गांवों को बनाया गया। खड़गदा इलाके में छात्रों के समूह पहुंचे वहां घूमकर आंकड़े और जानकारियां एकत्र की गईं। इसके बाद प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण कर चार्ट्स तैयार कर प्रदर्शनी लगाई गई। प्रदर्शनी गांववासियों के लिए खुली रखी गई जहां आकर उन्होंने अवलोकन किया।

खड़गदा का शैक्षिक भ्रमण कई मायनों में अनूठापन लिए हुए है। इस भ्रमण में मुख्य संकल्पना यह थी कि छात्रों को अपने परिवेश से जोड़ना। वे जिस समाज में रहते हैं वहां की समस्याएं क्या हैं, उन समस्याओं को समझना, और कैसे उनको शिक्षा का हिस्सा बनाया जा सकता है उस पूरी प्रक्रिया में से गुज़रने के अवसर देने की कोशिश की गई।

इस शिविर में सभी को चाहे वह शिक्षक हो या छात्र सभी को अपना कार्य ख़ुद ही करना होता था। सभी को अपने बर्तन साफ़ करना, झाड़ू लगाना, पानी भरना आदि समस्त कार्य ख़ुद करने होते थे। भोजन परोसना, और भोजन की संपूर्ण व्यवस्था छात्रों और शिक्षकों को ख़ुद करनी होती थी।

इन सबके पीछे छिपी बातें ये हैं कि छात्रों और शिक्षकों के बीच वे दीवारें ढह जाती हैं जो अक्सर शिक्षकों और छात्रों, बड़ों और छोटों के बीच खड़ी होती है। यहां का माहौल कुछ ऐसा था कि एक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में बिना किसी दबाव के जीवन के कार्यों को करते।

इस शिविर के दौरान कई ऐसे अनुभव हुए जिनको कभी भुलाया नहीं जा सकता। छात्राध्यापकों को एक साथ रहते हुए मानवीय गुणों को समझने का अवसर मिला। जब हम कहते हैं कि इंसानों में काफ़ी विविधताएं और उनमें अलग–अलग क्षमताएं होती है तो इन्हें पहचानने का सबसे बढ़िया माध्यम होता है शिविर। अक्सर स्कूलों और शिक्षा के महाविद्यालयों में स्कूल की चहारदीवारी में किताबों के अलावा और कुछ दिखता नहीं ऐसे में शिविर के दौरान छात्रों को एक दूसरे को समझने का अवसर मिलता है।

शिविर के दौरान ऐसे कितने ही कार्य किए जाने होते हैं जिनका अमूमन अपनी संस्थान में गुज़रने का अवसर नहीं मिलता। जो छात्र संस्थान में शिक्षण के दौरान अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन नहीं कर पाते उनको शिविर के दौरान प्रचुर मौक़े मिलते हैं। ऐसा ही कुछ यहां भी देखने को मिला। ऐसे छात्र और छात्राएं जो कक्षा में चुप रहते हैं उन्होंने शिविर के दौरान कई व्यवस्थाओं की ज़िम्मेदारी बख़ूबी संभाली। कई छात्राओं और छात्रों ने नाटकों और गीतों में समा बांध दी। कुछ छात्राओं ने राजस्थानी, गुजराती लोकगीतों के माध्यम से अपनी संगीत की क्षमता का परिचय दिया। उन्हें भी इसका अहसास हुआ कि वे संगीत और अन्य विधाओं में अव्वल हैं। कई छात्राओं और छात्रों ने गांवों में जाकर नुक्कड़ नाटक किए। नाटकों के माध्यम से उन्होंने गांववासियों की वाही–वाही बटोरी। नुक्कड़ नाटकों को करते हुए उनको यह समझ में आया कि डायलॉग की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो आम लोगों को प्रभावित कर सके। इस समझ के साथ वे अपने डायलॉग को निखारते जाते। शिविर के दौरान छात्र–छात्राओं ने दीवार–अख़बारों का प्रदर्शन किया। दीवार–अख़बार में उन सब घटनाओं का उल्लेख होता जो समूह के साथियों के साथ घटती।

शिविर में जहां मस्ती, आनंद और उत्सव का माहौल होता है वहीं जब गांवों में गए तो उन परिस्थितियों को देखकर मायूसी और निराशा भी होती है कि ग्रामीण भारत की ज़िंदगी कितनी कठिन है। गांवों में एक–दो दिन मेहमान के रूप में रहना काफ़ी लुभाता है मगर सही मायनों में यहां की ज़िंदगी काफ़ी कष्टप्रद होती है। यह बात छात्रों के द्वारा किए गए सर्वे में भी सामने आई कि यहां पानी का संकट होता है। जो पानी नसीब होता है वह दूषित होता है। गांवों में जो दलित लोग होते हैं उनके लिए ईंधन से लगाकर तमाम बुनियादी ज़रूरतों की चीज़ें मुहैया नहीं होती। बच्चों को वे सुविधाएं नहीं मिलतीं जो शहरों में नसीब होती हैं। गांवों में न तो कोई लायब्रेरी होती है न ही समय पर अख़बार आते हैं।

कुल मिलाकर पांच दिवसीय शिविर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय के छात्राध्यापकों और शिक्षक साथियों के लिए काफ़ी रोमांचकारी और सीखने की दृष्टि से संपन्नता लिए रहा।

रपट

शैक्षिक शिविर में स्वावलंबन का पाठ

कल्पना जैन

17 मार्च 2009 को सुबह 10:30 बजे हम सभी विद्या भवन गांधी शिक्षा महाविद्यालय के छात्राध्यापक और शिक्षक शैक्षिक शिविर के लिए खड़गदा रवाना हुए। उदयपुर से कुछ ही दूरी पर हम जयसंमद झील पर पहुंचे। जयसंमद राजस्थान की ही नहीं पूरे एशिया खंड में जानी–मानी झीलों में से एक है। वहां पर हम सभी ने खाना खाया, इतना सुहाना नज़ारा जयसंमद का देखकर मन पुलकित हो गया। ऐसा लग रहा था की जैसे कुदरत की सारी घटाएं सिमटकर जन्नत बन गई हों। दोपहर 2:00 बजे हम

★ विद्या भवन गांधी शिक्षा महाविद्यालय, उदयपुर में बी.एड. की छात्रा हैं।

जयसंमद से रवाना हुए और शाम को 4:00 बजे खड़गदा पहुंचे। डूंगरपुर ज़िले के कस्बा खड़गदा क्षेत्र में आदिवासी परिवार निवास बहुतायत से निवास करते हैं। यहां हमने बहुत कुछ सीखा कि किस तरह एक दूसरे के प्रति मान–सम्मान, आत्मीयता रखते हैं। हम सभी लड़कियों को एक हॉल में रहना था।

इस शिविर में हम अपने–अपने समूहों में बंटकर कार्य करते। आसपास के इलाकों में जाकर सर्वे करते अवलोकन करते। कुछ काम सभी लोग मिलकर करते।

शाम पांच बजे श्रमदान जिसमें हम सभी सड़कों, मैदानों आदि की साफ़ सफ़ाई का कार्य करते। मौन वेला जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था। पूरे दिन भर में इंसान को कुछ पल के लिए मौन रहना चाहिए, मौन रहने से हमारे शरीर और आत्मा को सुकून मिलता हैं चारों तरफ़ शांति है, न कोई शोर ना ही कोई आहट। ऐसा लगता है कि जैसे हम आत्मचिंतन कर रहे हों।

मौन वेला में हम सभी दूर–दूर पहाड़ी की तरफ़ जाते और मौन बैठते। जब सूर्य अस्त होता तो नज़ारा बहुत ही सुंदर दिखता। ऐसा लगता कि जैसे दिन भर जो सूर्य पुरी दुनिया को रोशन करता है, और शाम को अस्त हो जाता है।

दिनांक 18 मार्च को रात को कैंप फायर प्रोग्राम हुआ। कैंप फायर सबसे महत्त्वपूर्ण प्रोग्राम था। फायर कैंप में नृत्य एवं गीतों की प्रस्तुति की गई। बीच–बीच में रोचक चुटकले सुनाए गए। इस कैंप फायर प्रोग्राम का सभी विद्यार्थी, गांववालों, अतिथिगण एवं अध्यापकों ने आनंद उठाया।

19 मार्च को हम सभी ने अपने द्वारा किए गए सर्वे और प्राप्त जानकारियों के आधार पर दिनभर चार्ट बनाए और गांव में शाम को 5:00 बजे नुकड़ नाटक व शांति रेली निकली। इसी दौरान आतंकवाद, स्वास्थ्य आदि पर नुक्कड़ नाटकों का आयोजन किया गया। इस रैली में सभी ने आत्मीयता के साथ भाग लिया बहुत ही सुकून मिला।

20 मार्च को हमारे द्वारा निर्मित चार्ट की प्रदर्शनी लगाई गई। इस प्रदर्शनी का सभी छात्रों और आसपास के निवासियों ने अवलोकन किया।

8:30 बजे सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ जिसमें सभी ने अपनी प्रतिभा को व्यक्त किया। किसी ने संगीत के माध्यम से तो किसी ने चुटकुले तो किसी ने कविता के माध्यम से अपनी भावना को व्यक्त किया। यह बहुत ही सुंदर और सुव्यवस्थित कार्यक्रम रहा।

21 मार्च को सुबह 10:30 बजे शिविर का समापन हुआ।

शिविर कि सारी व्यवस्थाएं आश्चर्यचकित कर देने वाली थी। शिविर की पूरी व्यवस्था छात्राध्यापकों और शिक्षकों ने मिलकर की थी। यहां सभी कार्य हमें ख़ुद को ही करने होते थे। इस लिहाज़ से शिविर के माध्यम से हम स्वावलंबन का पाठ भी पढ़ रहे थे।

22 मार्च को 1:00 बजे खड़गदा से हम सभी रवाना हुए। शाम को 6 बजे हम अपने–अपने गंतव्य पर पहुंच गए।

विद्या भवन में
वनशाला यात्रा के पड़ाव

वि.वि. सिंह

क्या करते हैं बच्चे वनशाला में ? वनशाला के कार्यक्रम, क्या सीखते हैं बच्चे वनशाला में अर्थात् किन रूपों में विकास में सहायक है वनशाला, वनशाला स्थल का चयन किन बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है? शिक्षकों के लिए भी सोचने, सीखने के अवसर उपलब्ध कराती है वनशाला। विद्या भवन में वनशाला का आयोजन अभी भी जारी है। उतना ही उत्साह, उमंग और लगन के साथ वनशाला में भागीदारी हर किसी की होती है। इन्हीं कुछ बिन्दुओं को इस लेख में छुआ गया है।

बात अगस्त 1970 माह की है, मैंने विद्या भवन स्कूल में अध्यापन आरम्भ किया था। अभी स्कूल को समझना शुरू ही किया था कि पता चला अक्टूबर में दीपावली अवकाश से पूर्व वनशाला होगी। 'वनशाला' कुछ नया सा नाम, कुछ अनोखा–सा–क्या होगा, कहां जाएंगे, क्या करेंगे? ऐसे अनेक प्रश्न मस्तिष्क में घुमड़ने लगे। तैयारियां शुरू हुईं, मालूम पड़ा– वनशाला तीन समूहों में होगी – जूनियर, मिडिल और सीनियर सेक्शन। मिडिल सेक्शन, जिसके साथ मुझे जाना था, उस कक्षा में 6,7 व 8 के विद्यार्थी थे। इस वनशाला का अहमदाबाद में होना निश्चित हुआ था। हमें ट्रेन से जाना था। शुरू से भ्रमण का शौक़ रहा है, बच्चों के साथ, एक ज़िम्मेदारी के साथ, पहली बार एक अध्यापिका की भूमिका में इस तरह जाना उत्साहित भी कर रहा था।

अम्बाबाड़ी नामक स्थान में टेण्ट्स की व्यवस्था की गई थी। हम सबको उसी में रहना था। यात्रावाले दिन सुबह रवाना होकर शाम को वहां पहुंचे। अग्रिम दल, जो वहां पहले पहुंच गया था, ने गरम–गरम रात्रि भोज करवाया। अगली सुबह शुरू हुए दैनिक कार्यक्रम।

★ पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन सोसायटी जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर सब तैयार हो गए निरीक्षण के लिए। बड़े से मैदान में पी.टी. और फिर खुले में, दरी पर बैठकर प्रार्थना सभा, लुभावना प्रतीत हुआ। श्रेणी कार्य में बच्चे स्वयं जानकारी प्राप्त करते, लेख लिखते, फ़ाइल बनाते, उनकी सज्जा करते, चार्ट्स, नक्शे बनाकर रंग भरते। मौन वेला, अपना समय, कैम्प फायर, मज़लिस, कैम्प काउन्सिल की मीटिंग आदि शब्द मेरे शब्द भण्डार में उसी समय सम्मिलित हुए थे।

सबसे मनोरंजक लगा भ्रमण कार्यक्रम। बच्चों के साथ लंच पैकेट लेकर, बस में बैठकर या पैदल ही आस–पास के स्थान देखने, जानने के कई अवसर मिले। तभी देखी थी अहमदाबाद की हिलती मीनार, तभी देखा था नेशनल पार्क, तभी देखी थी कैलिको मिल और अहमदाबाद के भीड़ भरे बाज़ार। और उस पहली वनशाला से मेरे अन्दर वनशाला के प्रति एक लगाव, एक रुझान जो विकसित हुआ, वह इतने वर्षों बाद आज भी वैसा ही बना हुआ है।

दूसरी बार मुझे मौक़ा मिला वनशाला में मातृकुण्डिया जाने का। वही कक्षा 6,7 व 8 के प्यारे–प्यारे बच्चे। अपने माता–पिता से दूर हमारे साथ। एक दो दिन शुरू में कुछ उदास दिखते फिर मस्त, प्रसन्नचित अपने सब काम स्वयं करते दिखते। यथा अपना बिस्तरबंद अटैची उठाना, थाली–कटोरी, गिलास धोना, कपड़े धोना आदि कुशलता अथवा अकुशलता से करते हुए। एक उत्साह अवश्य उनके चेहरे पर नज़र आता। वे ख़ुशी–ख़ुशी ये सब काम करते हुए दिखते।

इस बार धर्मशालाओं में रहने की व्यवस्था थी। मातृकुण्डिया राजस्थान का पवित्र तीर्थ माना जाता है – अनेक मंदिर, धर्मशालाएं और पास में बहती नदी। नदी भी ऐसी, इतनी कम गहरी कि उसमें खड़े होकर आराम से नहाओ, कपड़े धोओ, बर्तन धोओ, कोई ख़तरा नहीं। बच्चे ख़ूब उछल–उछलकर नहाते, रेती में बर्तन रगड़–रगड़कर चमकाते। नहाने–धोने का समय कम पड़ता। खाने की घण्टी बजने पर पानी से निकलकर दौड़ते–भागते भोजन–स्थल पर पहुंचते।

आस–पास के गांवों में अध्ययन के लिए पैदल जाना पड़ता, पर कोई थका हुआ नहीं दिखता, न बच्चे, न शिक्षक। प्राप्त जानकारी के आधार पर अगले दिन बच्चों को फिर लेख लिखना, चार्ट, नक्शे, चित्र बनाना होता। सब कुछ आनन्ददायक – बोझरहित।

शाम को मौन वेला के पश्चात् होता 'अपना समय'। पूरा दिन घण्टियों के निर्धारित कार्यक्रमों से बंधा होता, पर यह समय यथा नाम पूरी तरह सबका अपना होता – सिर्फ़ अपना। यानी अपनी मनपसन्द अनुसार समय व्यतीत करने की स्वतंत्रता 'लक्ष्मण–झूला' नामक पुल पर खड़े होकर नदी को निहारना बड़ा लुभावना लगता – धीर मंथर गति से बहती नदी।

वनशाला जाने से पहले के कुछ दिन अत्यधिक व्यस्त होते। शिक्षकों की सूची निकल गई – किसको कहां जाना है, किन कक्षाओं के बच्चे साथ होंगे? अब स्थान विशेष के बारे में जानकारी प्राप्त कर अपनी श्रेणी का पाठ्यक्रम बनाना होता। इससे शिक्षकों का भी ज्ञानवर्द्धन और ट्रेनिंग होती है। पाठ्यक्रम बनाना कोई सरल कार्य तो नहीं। मीटिंग में सबको प्रस्तुत करना होता। धीरे–धीरे सब सीखते जाते। कुछ लोग उतनी रुचि नहीं भी लेते, उतना नहीं भी सीख पाते किन्तु व्यक्तिगत भिन्नताओं के चलते यह तो सब जगह होता है।

फिर निकलती बच्चों के नाम की लिस्ट। बच्चों को

रुचि अनुसार वरीयता क्रम में तीन श्रेणियों के नाम देने होते। लिस्ट निकलने पर सब बच्चे दौड़–दौड़कर नोटिस–बोर्ड पर देखते किसका नाम कहां आया? कौन–कौन उस श्रेणी में है? अपने मित्र का नाम किस श्रेणी में आया आदि – एक गहमा–गहमी रहती। श्रेणी अनुसार मिलने के लिए समय दिया जाता। श्रेणी अध्यापक सब जानकारी देते। कॉमन सूचनाओं के लिए पर्चे दिए जाते, साथ में ले जानेवाले सामान की सूची, कब रवाना होना है, कैसे जाना है, वग़ैरह। अलग–अलग समूहों में बैठकें होतीं – स्कूल का पूरा माहौल उत्साहपूर्ण प्रतीत होता।

जावर माइन्स वनशाला में हम लोग ट्रेन से गए थे। किसी भी स्टेशन पर ट्रेन रुकने पर बच्चे नीचे उतर पड़ते और पूरे स्टेशन पर नीली–नीली शर्ट (यूनिफार्म) ही नज़र आती। डर भी लगता कोई बच्चा छूट न जाए, पर विद्या भवन के बच्चे थे वह भी सीनियर वर्ग के, कई वनशालाओं में जा चुके थे, कैसे छूट सकते थे?

बच्चों के साथ तभी पहली बार मैंने भी माइन्स में जाकर देखा था खदानों में कैसे काम होता है, कैसे ट्रौली में माल इधर से उधर ले जाया जाता है। हेडलाइटवाली हेलमेटनुमा कैप लगाकर एक अलग ही अनुभूति हुई थी।

एक और पड़ाव – भीलवाड़ा में ग्राम भारती नामक स्थान पर वनशाला। बहुत बड़ा कैम्पस, खुला–खुला। ठहरने के लिए भी पर्याप्त स्थान कुछ पक्के कमरे, कुछ टेण्ट्स लगाए गए। विस्तृत कैम्पस में बच्चे उन्मुक्त भाव से दौड़ते, भागते। कहीं कमरों में, कहीं बाहर बैठकर श्रेणी कार्य करते, कभी भ्रमण हेतु जाते। कई फैक्ट्रीज का अवलोकन किया गया। तभी पहली बार देखा था मिल में धागों के ताने–बाने से कपड़ा बुनते।

शिक्षक के रूप में और भी कई वनशालाओं में भागीदारी व अनुभव प्राप्त करते हुए। वर्ष 1985 में अवसर आया वनशाला संचालिका के रूप में कक्षा–4 व 5 के बच्चों को वनशाला में ले जाने का। कहां जाना है? टीचर्स ने कई स्थान गिना दिए – अलग–अलग दिशाओं में, पास के, दूर के। अब मिलकर यह सोचना था कि निर्धारित बजट में कितनी दूर जा सकते हैं? कैसे जाना होगा? छोटे बच्चे हैं – सुरक्षा की दृष्टि से भी तमाम बातों का ध्यान रखना था। ठहरने की क्या सुविधा उपलब्ध हो सकेगी? आदि बातें एक बड़े प्रश्नवाचक चिह्न के रूप में सामने खड़ी दिख रही थी। खोज शुरू हुई, बहुत कुछ पता किया गया। अन्त में माउण्ट आबू में भारत स्काउट एवं गाइड शिविर स्थल हमें वनशाला हेतु उत्तम स्थान प्रतीत हुआ। विद्या भवन की तो शुरुआत ही स्काउटिंग के सिद्धान्तों पर आधारित है। माउण्ट आबू जैसे मनोरम स्थल पर वनशाला लगाई जा सकी।

कक्षा– 4 व 5 के बच्चे बिल्कुल पहली बार वनशाला में जाते हैं। अतः माता–पिता भी बच्चों को अपने से दूर भेजने में घबराते हैं। ये अपना सामान कैसे उठाएगा, इतना भारी है? कपड़े, बर्तन तो इसने कभी धोए नहीं – कैसे करेगा? कहीं बीमार हो गया तो? हमसे अलग तो ये कभी गया/गई नहीं आदि शंकाओं का निवारण करना अपने आप में बड़ा काम होता। मैंने देखा कि बच्चों को इस तरह की घबराहट आम तौर पर नहीं होती। वे तो वनशाला के बारे में प्रार्थना सभा में या अपने दल–अध्यापकों से सुन–सुनकर जाने के लिए अत्यधिक उत्साहित रहते हैं।

माउण्ट आबू में वनशाला की अन्य प्रवृत्तियों के साथ पर्वतारोहण का भी ख़ूब अनुभव बच्चों को प्राप्त

हुआ। वनशाला समाप्ति से पूर्व खुले में सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किया गया, जो नैसर्गिक सौन्दर्य के बीच बहुत ही सुन्दर बन पड़ा। इसमें अधिकाधिक बच्चों को समूह गान, समूह नृत्य, नाटक, मूकाभिनय, कव्वाली आदि में भाग लेने के अवसर मिले।

9–10 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों के लिए तो वनशाला इस दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण होती है कि वे पहली बार अपने परिवारवालों से अलग कहीं बाहर जाते हैं। अपना सामान ख़ुद उठाना, उन्हें संभालना, अपने कपड़े धोना, बर्तन साफ़ करना, अपने बिस्तर बिछाना – उसे समेटना – सब काम वे आम तौर पर पहली बार करते व सीखते हैं। पूरे दिन इतनी व्यस्त दिनचर्या होती है कि दिन निकलते पता नहीं लगता। बड़े मनोयोग से परोसगारी करते हुए छोटे–छोटे बच्चों को देखा जा सकता है। जिस श्रेणी की परोसगारी की बारी होती है वे बाद में भोजन करते हैं। कक्षा–कक्ष से हटकर बच्चों की अन्तर्निहित प्रतिभाएं एवं शक्तियां वहां नज़र आती हैं, नेतृत्व के गुण भी उभरकर सामने आते हैं। बहुत सी ज़िम्मेदारी के काम बच्चों को सौंपे जाते हैं और वे बहुत अच्छी तरह उन्हें करते हैं। स्वयं ज्ञान अर्जित करते हुए व व्यावहारिक दृष्टि से अनुभव प्राप्त करते हुए उनमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता व स्व–अनुशासन का विकास होता है। साथ ही परस्पर सहयोग व सामूहिक जीवन व्यतीत करने का अभ्यास होता है।

आम तौर पर वनशाला अवधि में 2–3 कैम्प फायर होते हैं, विद्यार्थी बिना शिक्षकों के निर्देशन के अपने स्तर पर ही इसके लिए आयटम्स की तैयारी करते हैं। आयटम्स भी मंच पर होनेवाले औपचारिक सांस्कृतिक कार्यक्रम से भिन्न होते हैं। किन्तु जूनियर स्कूल के बच्चों का वनशाला का यह पहला अनुभव होता है इसलिए कैम्प फायर क्या होता है, उसमें क्या करना होता है कैसे करना होता है – बच्चे नहीं जानते। पहले दिन के लिए तो शिक्षकों को पूरी गाइडेन्स कभी–कभी डिमोन्सट्रेशन भी देने पड़ते है।

वनशाला का एक विशेष कार्यक्रम है मौन वेला। शायद ही कोई शिक्षक या विद्यार्थी ऐसा होगा जिसे यह पसन्द न हो। कितने ही पूर्व छात्र आज भी मिलने पर वनशाला और मौन वेला को अवश्य याद करते है। खुले स्थान पर कुछ ऊंचाई पर मौन वेला स्थल का चयन किया जाता है, जहां से अस्ताचलगामी सूर्य को भली प्रकार देखा जा सके।

मौन वेला हेतु धीरे–धीरे चलते हुए वहां पहुंचकर सब लोग पश्चिम दिशा की ओर मुंह करके अपनी इच्छानुसार आगे पीछे चुपचाप बैठते जाते हैं। धीरे–धीरे अस्त होता सूरज, उसके बदलते रंग व आकार – बड़ा शांतिदायक दृश्य होता है। विचारों का ताना–बाना बुनता रहता है। ऐसा आनन्द, ऐसे स्वर्णिम क्षण – मन में विचार आता है यह सुख तो रोज़ लिया जा सकता है किन्तु रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में वह हो नहीं पाता। सूरज अपने नियम से रोज़ निकलकर रोज़ डूबता है, किन्तु उसे ग़ौर से देखने का, उस दृश्य को आत्मसात् करने का सुख फिर अगली वनशाला में ही मिल पाता है।

अध्ययन

लिखते समय बच्चों द्वारा "इ" और "ई" की मात्रा की गलतियों का अध्ययन

★ सुधा भण्डारी
★★ विश्लेषण : के.आर. शर्मा एवं नम्रता बत्रा

विद्या भवन में शिक्षकों का एक रिसर्च फोरम का गठन किया गया है। इस फोरम के तहत शिक्षक शिक्षण के दौरान स्व–अनुभूत मुद्दों और सवालों पर अध्ययन करते हैं। प्रस्तुत विवरण इसी प्रकार का एक उदाहरण है–

भूमिका

अगर आप औपचारिक या अनौपचारिक रूप से किसी स्कूल के शिक्षक से बात करें और उनसे पूछें कि उनकी कक्षा में बच्चे किस तरह की ग़लतियां करते हैं, तो सामान्यतः पाएंगे कि शिक्षकों के लिए बच्चों की वर्तनी की ग़लतियां प्रमुख हैं। ये ग़लतियां अलग–अलग तरह से होती हैं। इनमें प्रमुख है कि किन शब्दों में छोटी मात्रा आएगी और किन शब्दों में बड़ी।

इन ग़लतियों के फलस्वरूप बच्चों की नोटबुक में लाल स्याही से गोले लगाए जाते हैं। बच्चों को डांट भी खानी पड़ती है। कई बार शिक्षकों से यह भी सुनने को मिल जाएगा कि उनके कितने बताने पर और दस–बीस बार शब्दों को लिखने को कहने पर भी बच्चे ये ग़लतियां करते रहते हैं। कुछ शिक्षकों का यह मानना है कि बच्चे ये ग़लतियां स्वतः ही सुधार लेंगे।

अध्ययन का क्षेत्र एवं छात्रों की पृष्ठभूमि

मैं हिन्दी भाषा की शिक्षिका हूं और मुझे भी बच्चों की वर्तनी की ग़लतियों से रूबरू होना पड़ता है। मैं इन बच्चों को उनकी ग़लतियां सुधारने में कैसे मदद कर सकती हूं? यह सवाल मेरे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसलिए स्थिति को समझने के लिए मैंने तीन अलग कक्षाओं के बच्चों की 'इ' और 'ई' की ग़लतियों को और गहनता से अध्ययन करने का सोचा।

अपने अध्ययन के बारे में बताने से पहले मैं उस स्कूल का परिचय देना चाहूंगी जहां मैं कार्यरत हूं और जहां मैंने यह अध्ययन किया। मैं विद्या भवन बुनियादी स्कूल रामगिरि, उदयपुर में पढ़ा रही हूं। यह स्कूल ज़िला मुख्यालय के उत्तरी छोर पर माउंट आबू रोड पर स्थित है। इस स्कूल में कक्षा दसवीं तक के छात्र अध्ययनरत हैं। इस स्कूल में एक वृहद् पुस्तकालय भी है जहां छात्रों को अपनी पाठ्यपुस्तकों से हटकर अन्य पुस्तकों को पढ़ने का मौक़ा मिलता है।

इस स्कूल में ज़्यादातर बच्चे ग्रामीण परिवेश के हैं जो कि निम्नमध्यमवर्गीय समुदाय के हैं। इस विद्यालय में अधिकांश छात्र आसपास के गांवों से आते हैं और सुथार, राणा, डांगी, पंवार, सेन, गमेती, मेघवाल और गरासिया जाति के हैं। इनमें से 70 प्रतिशत बच्चों के मां–बाप या तो अपनी स्कूली शिक्षा खतम नहीं कर

★ विद्या भवन बुनियादी विद्यालय, रामगिरि में प्रधानाध्यापिका हैं। ★★विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र में कार्यरत।

पाए हैं या अनपढ़ हैं और खेती, दूध बेचने, ड्रायविंग और मज़दूरी जैसे व्यवसायों से जुड़े हैं। इसलिए कई बच्चों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करना मुश्किल ही होता है। बच्चों के घरों में स्कूल की किताबों के अलावा और क़िस्म की पुस्तकों आदि का अभाव भी है। 80 प्रतिशत बच्चे घर और स्कूल में मातृभाषा का प्रयोग करते है।

अध्ययन का उद्देश्य

छात्र भाषा का अध्ययन करते हुए 'इ' और 'ई' की ग़लतियां करते हैं। बच्चों को इन ग़लतियों को सुधारने के लिए कैसे मदद की जा सकती है? यदि इस बारे में कुछ संकेत मिल जाए तो भाषा शिक्षण की कक्षाओं की रणनीति तय करने में कुछ हद तक मदद मिल सकेगी।

उपकरण एवं प्रक्रिया

इस अध्ययन के लिए मैंने कक्षा पांचवीं, सातवीं और नवीं कक्षा के समस्त छात्रों को चुना। इन कक्षाओं में क्रमशः 33, 35 और 27 छात्र थे। सभी कक्षाओं को एक पाठ्य का श्रुतलेख दिया गया और फिर उनके जवाबों का विश्लेषण किया गया।

दरअसल मैं श्रुतलेख के माध्यम से बच्चों की 'इ' और 'ई' की ग़लतियों का अध्ययन करना चाहती थी तो मेरे सामने यह प्रश्न ज़रूर था कि मैं उच्चारण कैसे कर रही हूं। अक्सर यह देखा जाता है कि शिक्षकगण भी भाषागत रूप से सही उच्चारण नहीं करते हैं। अतः दिमाग़ में यह बात ज़रूर थी कि जो भी उच्चारित किया जाए वह सही हो। इसकी पूर्व तैयारी मेरे द्वारा की गई। तैयारी का दूसरा प्रमुख हिस्सा था पाठ्य का चुनाव और तीसरा छात्रों के बीच किस प्रकार से प्रस्तुत करना है। उल्लेखनीय है कि हर कक्षा में पाठ्य को पढ़ने के अलग–अलग मापदंड मैंने निर्धारित किए। इन सब बारीक़ियों को समझते हुए तैयारी को अंजाम दिया गया।

पाठ्य इस प्रकार है –

बम के धमाकों से सारी कारगिल घाटी गूंज उठी। साल में सात महीने बर्फ में रहने वाले कारगिल वासियों के लिए एक ही तो मौसम आता था, जब सूरज की गर्मी से पिघलकर चोटियों की बर्फ नदी के रूप में बहने लग जाती थी। घाटी कल–कल करते हुए पानी की सुरीली आवाज से भर जाती थी। मौसम खुशनुमा हो जाता था।

पाठ्य को प्रत्येक कक्षा में पढ़ने के कुछ नियम तय किए गए। श्रुतलेख करवाने के नियम मैंने प्रशिक्षण में सिखाए सिद्धान्तों व तरीक़ों के आधार पर ही तय किए और जिनकी समझ शिक्षण के दौरान बनी।

पाठ्य को कक्षा में पढ़ने का तरीक़ा

कक्षा पांचवीं– कक्षा पांचवीं में पाठ्य को तीन बार पढ़ा गया। छात्रों को कहा गया कि वे ध्यान से सुनें। वे अभी लिखें नहीं। पहली बार पाठ्य को धीमे–धीमे पढ़ा गया। दूसरी बार सामान्य गति से पढ़ा गया। और इस बार में शिक्षिका के द्वारा बोलते समय लिखने को कहा गया। इस बार में किसी भी पंक्ति को दोहराया नहीं गया।

कक्षा सातवीं– कक्षा सातवीं में शिक्षिका के द्वारा पाठ्य को एक बार सामान्य गति से पढ़ा गया जिसे छात्रों के द्वारा ध्यान से सुनने को कहा गया। दूसरी बार में उसी पाठ्य को सामान्य गति से पढ़ा गया और छात्रों को लिखने को कहा गया।

कक्षा नवीं– कक्षा नवीं में छात्रों के सामने उसी पाठ्य को केवल एक ही बार सामान्य गति से पढ़ा गया तथा लिखने को कहा गया।

विश्लेषण

छात्रों के द्वारा लिखे गए श्रुतलेख को जांचा गया। जांचने पर जो नतीजे आए वे नीचे तालिका में प्रस्तुत किए गए हैं। पहली तालिका 'इ' वाले शब्दों की है और दूसरी तालिका 'ई' वाले शब्दों की है। प्रत्येक तालिका के नीचे तालिका में प्रस्तुत किए गए आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है, वे इस प्रकार हैं–

'इ' की मात्रावाले शब्द

शब्द	कक्षा पांचवीं N=(33)				कक्षा सातवीं N=(35)				कक्षा नवीं N=(27)			
	सही	प्रतिशत	ग़लत	प्रतिशत	सही	प्रतिशत	ग़लत	प्रतिशत	सही	प्रतिशत	ग़लत	प्रतिशत
कारगिल	14	42.4	19	57.6	19	54.3	16	45.7	19	70.4	8	29.6
कारगिल	15	45.5	18	54.5	20	57.1	15	42.9	18	66.7	9	33.3
पिघलकर	13	39.4	20	60.6	33	94.3	2	5.7	21	77.8	6	22.2
वासियों	10	30.3	23	69.7	20	57.1	15	42.9	25	92.6	2	7.4
चोटियों	8	24.2	25	75.7	18	51.4	17	48.6	18	66.7	9	33.3

- तीनों कक्षाओं की तुलना करने पर पाया गया कि बड़ी कक्षाओं के बच्चे छोटी कक्षाओं के बनिस्बत 'इ' की ग़लतियां कम कर रहे हैं। अगर आंकड़ों के रूप में देखें तो पाएंगे कि कक्षा– 5 में लगभग 25 प्रतिशत बच्चे ग़लतियां नहीं कर रहे हैं। यह संख्या कक्षा– 7 में लगभग 50 प्रतिशत हो जाती है और कक्षा 9 में बढ़कर 66 प्रतिशत हो जाती है।
- यह भी सोचने लायक बिन्दु है कि कक्षा 5 में जिन दो शब्दों में बच्चों ने सबसे ज़्यादा ग़लती की है वे बहुवचन में हैं। कक्षा– 7 और 9 में यह ग़लती कम हो जाती है और कहा जा सकता है कि यह इसलिए हुआ कि बच्चों को यह नियम बता दिया गया है कि बहुवचनवाले शब्दों में शब्द के आख़िरी से पहले आनेवाली मात्रा छोटी हो जाती है। अगर कक्षा– 7 और कक्षा 9 में इन बहुवचन शब्दों के सही प्रतिशत को अन्य शब्दों के सही प्रतिशत से तुलना की जाए तो ज़्यादा फ़र्क़ नहीं दिखता। इसलिए नियम का असर कम लगता है।

- इस पाठ्य में 'कारगिल' शब्द दो जगह आता है। तीनों कक्षाओं के लगभग 3 प्रतिशत बच्चे इस शब्द को दूसरी बार जब लिखते हैं तो पहली बार से अलग लिखते हैं। कक्षा नवीं में, कक्षा पांचवीं और सातवीं के अनुरूप ज़्यादा बच्चे पहले सही लिखते हैं और दूसरी बात ग़लत।

'ई' की मात्रावाले शब्द

शब्द	कक्षा पांचवीं N=(33)				कक्षा सातवीं N=(35)				कक्षा नवीं N=(27)			
	सही	प्रतिशत	ग़लत	प्रतिशत	सही	प्रतिशत	ग़लत	प्रतिशत	सही	प्रतिशत	ग़लत	प्रतिशत
सारी	33	100	0	0	35	100	0	0	24	88.89	3	11.11
घाटी	32	96.97	1	3.03	34	97.14	1	2.857	26	96.3	1	3.704
महीने	22	66.7	10	30.3	16	45.7	19	54.3	14	51.9	13	48.1
उठी	33	100	0	0	35	100	0	0	27	100	0	0
गर्मी	30	90.91	3	9.091	24	68.57	1	2.857	22	81.48	5	18.52
नदी	28	84.85	5	15.15	35	100	0	0	25	92.59	2	7.407
थी	33	100	0	0	35	100	0	0	24	88.89	0	0
घाटी	32	96.97	1	3.03	35	100	0	0	26	96.3	1	3.704
पानी	33	100	0	0	35	100	0	0	26	96.3	1	3.704
सुरीली	30	90.91	3	9.091	32	91.43	3	8.571	26	96.3	1	3.704
जाती	32	96.97	1	3.03	35	100	0	0	27	100	0	0
ही	32	96.97	1	3.03	35	100	0	0	24	88.89	3	11.11

- कक्षा– 5 में चार ऐसे शब्द थे, जो सभी बच्चों ने सही लिखे। कक्षा– 7 में ऐसे शब्दों की संख्या सात थी पर कक्षा– 9 में इनकी संख्या घट कर तीन हो गई। तीनों कक्षाओं में दो ऐसे शब्द थे जो सभी बच्चों ने सही किए– थी और उठी।

- तीनों कक्षाओं में ज़्यादातर शब्दों में 10 प्रतिशत से कम बच्चों ने ग़लत जवाब दिए हैं। कक्षा–5 में दो बच्चे हैं जिन्होंने 10 प्रतिशत से ज़्यादा ग़लत जवाब दिए हैं और यह संख्या कक्षा– 7 में एक है और कक्षा– 9 में बढ़कर चार है।

- ग़ौर करने योग्य बात यह भी है कि अगर हम ''महीने'' शब्द को छोड़ दें तो किसी भी कक्षा में 20 प्रतिशत से ज़्यादा बच्चों ने ''ई'' की मात्रा में गलती नहीं की है।

(इस अध्ययन में पाठ्य में आए शब्दों में बड़ी (ई) और छोटी (इ) वर्तनी के कुछ शब्दों को पूरी तरह छोड़ दिया गया है। जैसे ''लिए,'' ''की''। इसके अतिरिक्त कुछ शब्द पाठ्य में दो–दो बार आए हैं उनको विश्लेषण में एक बार शामिल किया गया है जैसे– 'जाती', 'थी'।)

निष्कर्ष

दोनों 'इ' और 'ई' मात्रा की ग़लतियों का विश्लेषण करने पर कहा जा सकता है कि :

- तीनों कक्षाओं में बच्चों को 'इ' की मात्रा में, 'ई' की मात्रा से ज़्यादा दिक़्क़त आ रही है।

- जैसे–जैसे बच्चे बड़ी कक्षा में जाते हैं, उनकी 'इ' की मात्रा की ग़लतियां कम हो जाती हैं। यह कुछ हद तक कहा जा सकता है कि बच्चों के पढ़ाई के जितने साल बढ़े हैं, अर्थात् पाठ्यसामग्री से जितने ज़्यादा सपंर्क हुए हैं उतनी उनकी ग़लतियां सुधरी हैं। यह बात और ठोस रूप से तब कही जा सकती है जब हम देखते हैं कि बहुवचन के शब्दों में नियम बताने पर भी बड़ी कक्षाओं में ग़लतियां अन्य शब्दों के अनुरूप रहती हैं।

- 'ई' की कहानी 'इ' से कुछ भिन्न है। यहां पाया गया कि अगर एक शब्द छोड़ दें तो तीनों कक्षाओं में लगभग 80 प्रतिशत बच्चे ग़लतियां नहीं कर रहे हैं। ऐसा नहीं पाया गया कि कक्षा– 9 तक आते 'ई' की ग़लतियां कम हो रही हैं। बल्कि 12 में से 8 शब्दों में कक्षा– 5 से कक्षा– 9 तक ग़लतियों की संख्या बढ़ी और केवल 2 शब्दों में घटी। यह भी देखा गया कि कक्षा– 7 में सबसे ज़्यादा शब्दों को सभी बच्चे सही लिखते हैं और केवल 1 शब्द में 10 प्रतिशत से ज़्यादा बच्चे ग़लतियां करते हैं।

सारांश के रूप में यह कहा जा सकता है कि 'इ' की मात्रा के सीखने में पाठ्यसामग्री के संपर्क होने से फ़र्क़ पड़ा है पर 'ई' की मात्रा ज़्यादातर बच्चे सभी कक्षाओं में सही कर पाए हैं। यह भी कहा जा सकता है कि किसी कारणवश (जो शायद उच्चारण में निहित है) बच्चों के लिए 'ई' की मात्रा लगाना 'इ' की मात्रा लगाने से ज़्यादा स्वाभाविक है।

डायरी

शिक्षक की डायरी

★ एकता शर्मा

सभी शिक्षक अमूमन डायरी लिखते हैं। ज्यादातर मामलों में डायरी लिखना एक मज़बूरी सी होती है। कई कक्षाओं में सीखने–सिखाने का बढ़िया माहौल होता है मगर वह डायरी में झलक नहीं पाता। विद्या भवन में शिक्षक–शिक्षिकाएं अपनी डायरी में वह सब लिखते हैं जो कक्षाओं में घटित होता है। ऐसी डायरियों के अंश हम बुनियादी शिक्षा में प्रकाशित करते आए हैं। इसी कड़ी में पढ़िए विद्या भवन बुनियादी विद्यालय, रामगिरि, की एकता शर्मा की डायरी का अंश–

दिनांक 23 अगस्त 2007

शिक्षण कार्य मात्र पाठ्यक्रम की पूर्ति एवं उसके बाद परीक्षा, वहीं तक सीमित है, ऐसा मैं समझती थी, जैसा कि आम तौर पर विद्यालयों में होता भी है। शनैः शनैः यह भ्रांति, विद्या भवन की विभिन्न कार्यशालाओं में भाग लेकर दूर हुई, मेरा अध्यापन कार्य सरल बन सका। सदा इसी असमंजस में रहती कि वो कौनसा ऐसा उपाय है जिससे 'अपनी समझ और 'बच्चों की सोच' को एकरूपता मिल सके।

मैंने अपनी कक्षा के बच्चों (नर्सरी) के साथ बात-चीत करना, उनकी छोटी-छोटी समस्याओं, विचारों और उनके व्यक्तिगत अनुभवों को सुनना और उससे भिन्न विषय बना सकने का रास्ता बनाया। इन अनुभवों को मैंने समय-समय पर लिखा भी, किसी वस्तु या विशेष पर बच्चों की प्रतिक्रियाएं कि वो उसके बारे में क्या जानते हैं? उसे लिख लिया, वे अपनी बात कहने और करके दिखाने के लिए स्वतंत्र होते, उस समय उन्हें लेशमात्र भी टोका नहीं जाता, जिससे वो सरलतापूर्वक अपने विचार कह पाएं।

इस संबंध में, बच्चों की अवलोकन करने की समझ कैसी होती है तथा तत्काल 'वो' किसी बात को कहां, किससे जोड़ लेते हैं उनकी सृजनात्मक व कल्पनाशक्ति है। जो बहुत रोचक भी रहे।

★ विद्या भवन बुनियादी विद्यालय, रामगिरि में शिक्षिका रही हैं।

गिनती का पेड़

आज कक्षा में बच्चों में अति उत्साह है, वो पेड़ जो बनानेवाले है। हालांकि यह बात कल मैंने ही उनसे कही कि 'हम एक पेड़ बनाएंगे और मैं उसी के लिए एक बड़ी 'शीट' लेकर कक्षा में प्रविष्ट हुई। बच्चों ने कहा, ''मैडम पेड़ तो लकड़ी से बनता है, आपने कहा था, ''हम पेड़ बनाएंगे' उनकी बात समझते हुए मुझे देर न लगी। तुरन्त उनकी जिज्ञासा शान्त करने के लिए मैंने समझाया कि किस प्रकार पेड़ बनेगा और कटिंग द्वारा शीट का आकार दिया। उसके बाद पेड़ पर रंग बच्चों ने किया इस दौरान हुई बच्चों की बातें इस प्रकार हैं-

नीलम : ''मु अणी पेड़ पर चढ़ूंगा।''

निखिल : ''पेड़ पर किसतर चढ़ेगा यो कई हांचि सो थोड़ी है नई मैडम ये पेड़ नकली है ना''

वो अपनी बात पर 'सत्यता' की छाप लगवाने के लिए मेरी ओर अनवरत देखता रहा, उनकी बातें सुनकर मैंने मुस्कराकर हां में सिर हिलाया। साथ ही बताया, इस पर कौन बैठेगा? बच्चों को अचरज हुआ, तब मैंने पहले से काटे हुए 1 से 10 तक के अंक दिखाए, साथ ही एक-एक अंक चिपकाते हुए (उस पेड़ पर) यह कविता सुनाई, जो बच्चों ने खूब उल्लास से गाई। 'गिनती के एक पेड़ पर पहली-पहली पत्ती पर एक भैया बैठा है।'गिनती के एक पेड़ पर दूजी-दूजी पत्ती पर दो भैया बैठा है।'' इस तरह दस तक बोला गया। निखिल बोल पड़ा ''ओ तो गिनती सो पेड़ है।''

दिनांक 24 अगस्त 2007

गिनती की सुन्दरता

रंगों की बात, कल पेड़ पर गिए रंगों से जोड़ते हुए मैंने बच्चों से पूछा ''रंगों के बारे में कौन-कौन जानता हैं?''

निकिता ने कहा- ''मैडम हम ड्राइंग करते हैं विस में रंग करते हैं।''

बिल्कुल ठीक कहते हुए मैंने बात आगे बढ़ाई, सभी बच्चे इसमें रुचि ले रहे थे। अन्त में मैंने बताया रंगों से कोई भी चीज़ सुन्दर बनाई जा सकती है। जैसे कल पेड़ बनाया था, पहले वो

खाली लग रहा था रंग भरने से सुन्दर दिखने लगा। बच्चों ने भी अपने-अपने स्तर पर उदाहरण दिए इसी कड़ी में किसी ने कहा ''मांडणा करते हैं तब रंग पूरते हैं; अभय ने अपनी बात जोड़ी ''होली पर हम मुंडे पर भी रंग लगाते हैं।'' मेरे हां करने के बाद, हंसने पर अभय सहित सब बच्चों को भी हंसी आ गई। रंग सचमुच कितने सुन्दर होते हैं।

दिनांक 04 जनवरी 2008

सपने

आज सुबह की प्रार्थना के बाद खेल के समय मैंने बच्चों से कहा कि ''आज हम सपने लिखेंगे, आप लोग मैडम को बताना कि कल रात को क्या सपना आया और अच्छा लगता है सपने देखना।''

इस सूचना के आधार पर कक्षा में आते ही बच्चे सपना सुनाने को उत्सुक नज़र आये, मैंने बारी-बारी से बच्चों को बुलाया-

1. अभय - ''मैं कामेश (बड़ा भाई) के साथ खेला था, फिर स्कूल आया।''
2. अनिल - ''मैडम सपना आताइ नइ है।'' मैंने कहा आज देखना ज़रूर आएगा वो मुस्कराकर चला गया।
3. चंचल - ''आश्रिप मेर के मारी मैंने विसको पटका और घर भाग गई।''
4. कृष - ''जानूं ने मेरी थैली तोड़ दी, मुझ पर पानी ढोला।'' (फाल्गुनी (जानूं) हैं।)
5. रंजना - ''मेरे पापा ने मुझको कूटा, मैं रोने लगी फिर आइसक्रीम खाके मम्मी कोडे जाके का मन्ने नींद आवे।''
6. नीलम - ''मैं चुला जगाती हूं ना विसके धुएं से ओखवों बली फिर मैं सारा (चारा) लेने गई ने मुझको मम्मी ने उठा दिया।''
7. पूजा - ''मैं कभी सपना नहीं देखती'' मैडम- आज देखोगी।

   पूजा- ''नहीं मुझको अच्छा नहीं लगता, कोई भी नहीं, और जगह पर जाकर बैठ गई।

8. निखिल - ''मैंने एक ख़तरनाक़ हाथी देखा जिसने एक आदमी को पटक कर मारा था। फिर मैं भागा तो मेरे पीछे एक मुर्गी पड़ गई मुझको गुस्सा आया फिर जिसको एक डोरी से बोढ़ं (बांध) के मैंने पटक दिया वो मुर्गी भी बोत ख़तरनाक़ थी।'' फिर तुम डरे, मैंने पूछा। उसने कहा- नइ मैं पापा के पास जाके रोने लग गया।

दिनांक : 30 जनवरी 2008

''अक्षर की रेल चली''

जिस प्रकार कटिंग द्वारा पेड़ बनवाया था, आज उसी तर्ज पर हम अक्षर (स्वरों) की रेल बनानेवाले है। बच्चे पहले से ही तैयार बैठे हैं। इससे संबंधित पूरी कविता (एक-एक स्वर पर) भी लिखी गई। बच्चों द्वारा बोली गई साथ ही ''मोनिका ने कहा चलो भई रेल का टिकट लगेगा लेन बनाओ।''

बच्चों को इस खेल को वास्तविकता से जोड़ना अच्छा लगा। इसके बाद वे अपने-अपने घर पहुंचे। (रेलयात्रा के पश्चात्) और जो दृश्य बना उसे नर्सरी कक्षा में एक छोटे से गांव को जीवंत कर दिया क्योंकि उनका सहज अभिनय और बिना किसी निशान के घर बनाकर उसका वर्गीकरण, फिर किसी का खेत पर जाना, किसी का कुएं से पानी लेकर आना इत्यादि क्रियाएं मेरे लिए अकल्पनीय थीं। फिर कृष ने तो दुकान ही लगा ली और लगा बेचने विभिन्न वस्तुएं। सच में यह अवर्णनीय है।

अनुभव

खेल और शिक्षा की जुगलबंदी

★ ईश्वर सिंह शेखावत

मुझे अगस्त 1997 से विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि में एक शारीरिक शिक्षक के रूप में कार्य करने का मौक़ा मिला। जब मैं विद्यालय में आया तो यहां की अध्ययनरत बलिकाएं बहुत शर्मीली थीं। अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक नहीं रख पाती तथा खेल के मैदान के बाहर जाकर बैठ जाती दौड़ने से, बॉल फेंकने से, किक मारने से, गोला, भाला, तस्तरी फेंकने से शरमाती रहती व कोई जवाब नहीं देते हुए किसी भी खेल में भाग नहीं लेतीं। लड़कियों को लगता कि खेलने का हमसे क्या वास्ता! इस तरह के खेलों में भागीदारी की तो सोच भी नहीं सकती। खेलों की पोशाकों से भी अनभिज्ञ थीं। जब मैंने अभिभावक सम्मेलन में अभिभावकों से बात की तो उन्होंने कहा 'म्हाण कई नौकरी करवावणी है' 'अणी छोरियां न बारण थौड़ी ही जावणो है।'

इनके इस विचार से मुझे चिन्ता हुई। पता किया कि ऐसा क्यों कह रहे हैं। साथियों ने कहा इन बच्चियों की शादी आसपास के गांव में बचपन में ही माता–पिता करवा देते हैं। इससे बचपन में ही उम्र से पहले बच्चे होना बीमारियां, कमज़ोरी, बेरोज़गारी आदि समस्याएं घर कर जाती है।

बाल–विवाह यहां एक परम्परा बन चुकी है। अतः इनको खेल, स्वास्थ्य एवं शिक्षा से कोई लेना–देना नहीं है। इन विचारों से मेरी चिन्ता और अधिक बढ़ गई।

मैं कक्षा एक से लेकर दस तक समस्त बालक–बालिकाओं को खेल (स्वास्थ्य एवं शारीरिक शिक्षा) के कालांश में विभिन्न खेलों का अभ्यास करवाता, जैसे वॉलीबॉल, फुटबॉल, खो–खो, कबड्डी, देशी खेल– रूमाल झप्पटा, लंगड़ी टांग, सितोलिया, नेताजी आदि। प्रथम वर्ष में स्थानीय खेल कबड्डी को चुना तथा केवल छात्रों की टीम बनाकर ज़िला स्तर पर ले गया जिसमें एक बालक रघुवीर उसी वर्ष राष्ट्रीय स्तर तक खेला। उस बालक ने विद्यालय की प्रार्थना सभा में अपने अनुभव सुनाए।

मैंने अपने स्कूल में सभी से कहा कि इस प्रकार की प्रतियोगिताएं बालिकाओं के लिए भी होती हैं। बालिकाओं ने अगले ही वर्ष ज़िला स्तरीय बॉलीबॉल प्रतियोगिता में भाग लिया। ज़िला स्तर से तीन बालिकाओं का चयन राज्य स्तरीय प्रतियोगिता के लिए सवाई मानसिंह स्टेडियम जयपुर में हुआ।

बालिकाओं के माता–पिता उदयपुर से बाहर उन बच्चों को भेजने से डर रहे थे तथा भेजने से मना कर रहे थे। विद्यालय की प्रधानाध्यापिका व कुछ अध्यापिकाएं बालिकाओं के माता–पिता को समझाने के लिए उनके घर गए तथा उनको समझाया। इस प्रकार वे बालिकाओं को भेजने के लिये तैयार हुए। बालिकाओं का अच्छा प्रदर्शन रहा।

तब से हमारे विद्यालय की बालिकाओं और उसके माता–पिता की सोच में अंतर आया है। किसी भी शिविर, कैम्प, सेमीनार, प्रदर्शनी, विज्ञान मेला,

★ विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि, उदयपुर में शारीरिक शिक्षक हैं।

वाद–विवाद प्रतियोगी परीक्षाओं आदि में भाग लेने के लिये आत्मविश्वास व जोश से जाती हैं।

बालिकाओं की शादी 18 वर्ष से पहले नहीं करनी चाहिए यह उनके कुछ माता–पिता समझने लगे हैं। बेटा–बेटी में अंतर नहीं है यह भी मानने लगे हैं। घर की बेटी को शिक्षा दिलानी चाहिए। वह भी पूरा परिवार संभाल सकती है जानने लगे हैं। आज कोई इंजिनीयरिंग कॉलेज में, बी.एड. कॉलेज में तथा कोई शारीरिक शिक्षा कॉलेज में, कोई कॉमर्स, आर्ट्स व साईंस कॉलेज में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही है।

मैं हमेशा विद्यालय में निर्धारित समय से 15 मिनिट पहले जाकर विद्यालय के छात्र–पंचायत के सदस्यों को अलग–अलग ज़िम्मेदारी सौंपता जैसे साइकिल स्टैण्ड की ज़िम्मेदारी (साइकिलों को क़तारबद्ध खड़ा करना), मुख्य गेट पर (देरी से आनेवाले विद्यार्थियों की जानकारी के लिये), प्रार्थना सभा में पहले सफ़ाई की जांच (वेशभूषा, नाखून, बाल कटिंग, स्नान, साफ़ कपड़े आदि), दरी पट्टियां बिछाना, माइक लगवाना, समाचार पत्रों से समाचार की न्यूज़ का संकलन करके प्रार्थना सभा में प्रस्तुत करना, प्रेरक प्रसंग, अनमोल वचन, महापुरुषों की जयंतियों पर साहित्य सामग्री एकत्रीकरण आदि समस्त कार्य नियमित विद्यार्थियों के माध्यम से करवाने का प्रयास करता। कुछ बच्चे इन कार्यों को मेरी उपस्थिति में ज़िम्मेदारीपूर्वक सही करते, कुछ को बार–बार याद दिलाना पड़ता। जितना अधिक उनको कहता उतने ही वे मेरे सुझाव पर निर्भर रहने लगे।

खेल व्यवस्था में भी वालीबॉल, फुटबॉल में हवा भरना, नेट बांधना, मास पीटी, योग करवाना, ड्रम बजाना, यह सभी कार्य मेरी अनुपस्थिति में नहीं कर पाते थे।

मैंने एक दिन सोचा कि ये बच्चे पूर्णरूप से हर वक़्त मेरे सुझाव की प्रतीक्षा करते रहते हैं जिससे ये बालक मेरे विचार से कमज़ोर और दूसरे पर निर्भर रहने लगे हैं।

मैंने एक दिन प्रार्थना सभा के बाद 10 मिनट के लिए बालकों को रोका और कहा कि विद्यालय का काम अपना काम है तथा यह समस्त कार्य जो हम विद्यालय में कर रहे हैं वे सब अपने लिए ही कर रहे है। अतः सभी विद्यार्थी अपने–अपने कार्य को बिना किसी निर्देशन के समय पर करें। अगर आपको कोई कठिनाई हो तो हमसे सुझाव ले सकते हैं।

अगले दिन से विद्यार्थी बिना किसी आदेश के अपना कार्य करने लगे। मैं प्रार्थना में देरी से गया बालक क़तारबद्ध खड़े थे सभी सामग्री व्यवस्थित थी। बिना किसी मदद के स्वयं ने प्रार्थना सभा की, खेल सामग्री की व्यवस्था की। सारी कक्षा क़तार बनाने लगी, मास पीटी, योग, खेल, एथेलेटिक्स मीट का कार्यक्रम, वार्षिक मकर संक्रान्ति का कार्यक्रम, फुटबॉल, बॉलीबॉल के पंचर निकालना सब कार्य ईमानदारी से करने लगे जो अब तक कर रहे हैं। बालक अपनी रुचि से स्वयं काम करने लगे। वे अब दबाव में भी नहीं रहते व प्रसन्नता से एक सहयोग की भावना से स्वतंत्ररूप से विद्यालय के समस्त कार्यों को अपनत्व की भावना से करते हैं।

गांधीजी ने भी कहा कि 'सा विद्या या विमुक्तये।'' जो मुक्ति के योग्य बनाए वह विद्या बाक़ी सब अविद्या।

संवाद

बातचीत से हल होते हैं मसले

★ पुष्पा शर्मा

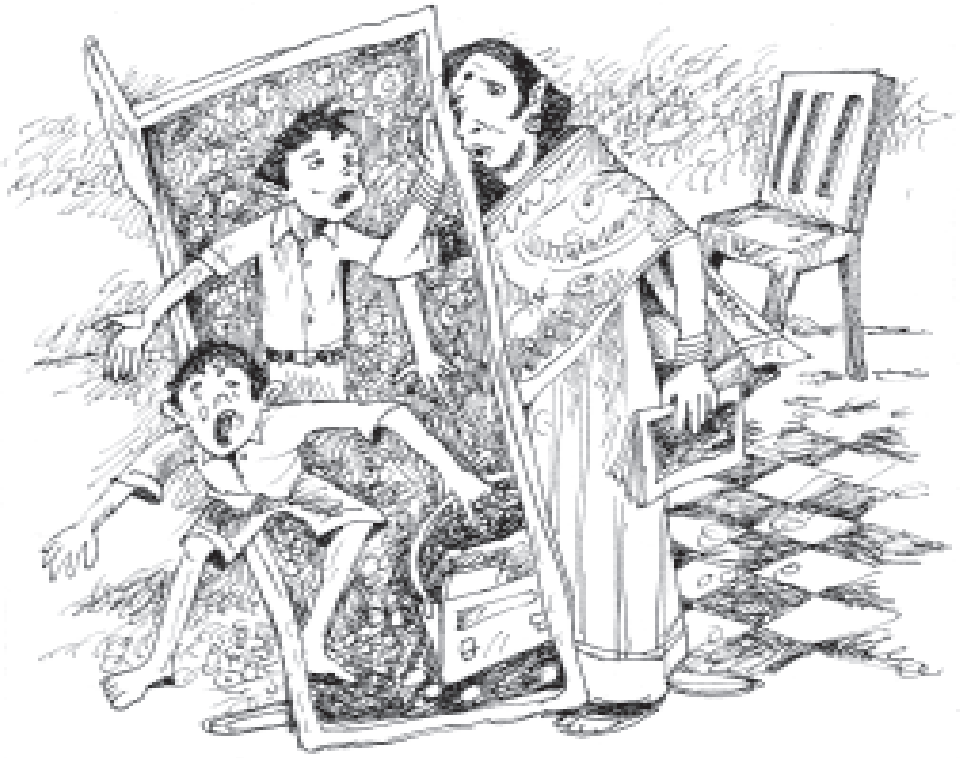

ग्यारहवीं कक्षा का एक विद्यार्थी दौड़ता हुआ मेरे पास आया। किसी परेशानी के मारे उसका मुंह लाल हो चुका था, आंखों में आंसू थे। मैंने पूछा कि क्या बात हो गई? पता लगा कि उसी के कक्षा के पवन ने उसे बिना बात के बुरी तरह मारा।

अब पवन और विजय दोनों मेरे सामने थे। पवन का कहना था कि उनका इकोनॉमिक्स का पीरियड हो रहा था और उस समय विजय ज़ोर–ज़ोर से दरवाज़े पर पांव से मार रहा था, इसलिए उसे गुस्सा आ गया और उसने विजय को मारा।

मैंने समझाने के लिये इतना ही कहा कि भई तुम्हारी तो अभी तक कभी कोई शिकायत नहीं आई और फिर शिक्षक के मना करने पर भी तुमने विजय को मारा, यह अच्छी बात नहीं हैं। मेरा इतना ही कहना भर था कि पवन फूट पड़ा– मैडम ऐसा कीजिए मुझे टीसी दे दीजिए। मुझे आप निकाल दीजिए स्कूल से।

★ प्रिंसिपल, विद्या भवन सीनियर सैकेण्डरी स्कूल, उदयपुर

मैं सन्न सी रह गई कि मैंने तो अभी तक कुछ कहा ही नहीं इस बच्चे को और अचानक इसे यह क्या हुआ? मुझे अनायास समझ में आने लगा कि किशोरवय के दिमाग़ में कोई ग्रन्थि घर कर गई है और वह बहुत घुटन महसूस कर रहा है। मैंने कहा पवन इतनी सी लड़ाई पर क्या स्कूल छोड़ दिया जाता है? तुम्हारे पिताजी को कैसा लगेगा? सपाट सा उत्तर आया पवन की ओर से– 'मेरे पिताजी नहीं हैं मैडम'।

अरे! एक तार सा झंकृत हुआ मेरे मन में कि यह अनाथ किशोर, बिना किसी सहारे के इस अनजान शहर में अकेला न जाने कितनी समस्याओं से जूझ रहा है। कौन होगा जो उससे निकटता से बात कर रहा है? कौन होगा जो उसके किशोर मन की उलझनों को सुलझाने में मदद कर रहा है?

मैंने उस स्थिति में अपनी भूमिका को समझते हुए प्यार से उससे बातचीत की कि पवन क्या हमें छोटी–छोटी बातों पर अपने दोस्तों से मार–पिटाई करनी चाहिए।

मैं तो जानती हूं कि तुम एक अच्छे विद्यार्थी हो जिसकी कभी कोई शिकायत नहीं आती। बताओ अब पढ़ने का इरादा है या स्कूल छोड़ने का?

न जाने तप्त किशोर मन पर बातचीत ने क्या स्नेहिल बौछार की कि पवन ने स्वीकार किया कि उससे ग़लती हुई है। पवन यह कहकर वहां से चला गया।

• •

आजकल हमारे यहां मोबाइल की बड़ी समस्या है। बड़े तो बड़े मगर छोटे–छोटे बच्चे भी स्कूलों में मोबाइल लेकर आते हैं। यह भी देखने में आता है कि मोबाइल न केवल कक्षा में बल्कि हर स्तर पर समस्या पैदा करने लगता है। हर कहीं बैठकों में, कार्यशालाओं में कक्षाओं में मोबाइल अड़चनें पैदा करता है। ऐसे में कुछ दिन बाद मैंने स्कूल में अनाउंस किया कि कोई विद्यार्थी मोबाइल नहीं लाएगा अन्यथा उसका मोबाइल ज़ब्त कर लिया जाएगा।

अगले दिन क्या देखती हूं कि पवन आफिस की ओर चला आ रहा है। जब वह मेरे सामने आकर खड़ा हुआ तो मैंने अपना सिर उठाया– उसने कहा कि मैडम यह मोबाइल रख लीजिए, मैं छुट्टी के समय ले जाऊंगा। मैंने पवन से पूछा कि आख़िर तुम मोबाइल रखते ही क्यों हो? इस पर उसने बताया कि चूंकि वह इस शहर में अकेला रहता है इसलिए घर बातचीत करने के लिए मोबाइल रखता है। उसने यह भी कहा कि वह रोज़ाना सुबह स्कूल आने पर मोबाइल जमा कर देगा और छुट्टी होने पर वापस ले लिया करेगा।

एक शिक्षक के प्रति उस बच्चे के विश्वास ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि बच्चों की बात को ठीक से सुना जाए, समझा जाए, उनसे बातचीत की जाए तो फिर समस्याएं, समस्याएं न रहकर समाधान बन जाती है। हर स्तर पर यह आवश्यक है कि बच्चों को समय दिया जाए, हर समय उपदेशात्मक शैली न अपनाकर उनके मन को टटोला जाए, उनके विश्वास को जगह दी जाए तो फिर बाल मन बिखरेगा नहीं, किशोर मन टूटेगा नहीं, सृजित होगा।

बालकों की संवेदनशीलता के प्रति संवेदनशीलता का प्रश्न

★ ए.के. पालीवाल

बच्चों के साथ काम करते करते अब यह बात ज़्यादा अच्छी तरह समझ में आ रही है कि बालक को भगवान का प्रतिनिधि क्यों कहा जाता है। बच्चे 'अहम' से दूर होते है। वे वयस्क की तरह चालाक एवं धूर्त नहीं होते। वे वयस्कों की तरह किसी दुर्भावना से किसी का बुरा नहीं करते। उनका दृष्टिकोण बहुत 'व्यापक' होता है। वे 'ज्ञान', 'कौशल' एवं 'दृष्टिकोण' के संतुलित उदाहरण होते हैं। इस संदर्भ में सिगमंड फ्रायड के 'अहम' तथा जेक्स रूसो के 'स्वतंत्रता' विषयक विचारों को ज़्यादा गहराई से समझने की ज़रूरत है। मुझे लगता है जे. कृष्णामूर्ति इस वैचारिक खाई को संवेदनशीलता से ढंक देते हैं और इसे एक 'ब्रिज' (पुल) बना देते हैं।

यहां जो 'अमूर्त' बातें कही गई हैं उन्हें ज़रा हम 'मूर्त' उदाहरण लेकर गहराई में समझने की कोशिश करते हैं। निम्नांकित 'घटनाएं' वास्तविक हैं। सिर्फ़ सुविधा के लिए नाम में कुछ परिवर्तन कर दिए गए हैं।

दृश्य एक : 'गिल्लू' एक मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मी ढाई वर्ष की सक्रिय एवं चंचल बालिका है। शहर के एक 'अच्छे' अंग्रेज़ी माध्यम विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजी जाती है। वह घर पर 'बातूनी' कहलाती है। हमेशा 'चटर–पटर' करती रहती है। 'ऑटो अंकल' से बोलती रहती है। प्रश्न ज़्यादा करती है। ज़रा उसके प्रश्नों को देखिए। शाम को 'पार्क' में खेलने जाते समय अपने 'ताऊजी' से गिल्लू प्रश्नों की बौछार करती है। (1) मुझे स्कूल क्यों भेजते हो? क्या आप घर पर मुझे नहीं 'पढ़ा' सकते हो?, स्कूल में 'मैम' 'डांटती' क्यों हैं? 'टिफिन' 'फिनिश' नहीं करने पर 'मैम' ज़्यादा 'पनिश' क्यों करती है? स्कूल में ज़्यादा खेलने क्यों नहीं देते?

दृश्य दो : अख़बार के मुख्य पृष्ठ पर छपे एक 'फ़ोटो' को देखकर गिल्लू ने प्रश्न किए। फ़ोटो एक बालक का था। उसके पांव पर प्लास्टर बंधा था। उसके 'ताऊजी' के साथ हुए संवाद को सुनिए :

★ विद्या भवन शिक्षा महाविद्यालय में पढ़ाते हैं।

गिल्लू : 'भैया' को क्या हुआ? इसके पांव पर ये क्या है?

ताऊजी : इसके लग गई है?

गिल्लू : क्या इसका 'एक्सीडेन्ट' हो गया है?

ताऊजी : हां! ऐसा ही लगता है।

गिल्लू : क्या ऑटोवाले ने इसको टक्कर मारी है? मैं ऑटोवाले को डांटूंगी।

दृश्य तीन : गिल्लू 'पार्क' में कई तरह के झूले झूलती है। वह एक–एक कर सभी झूले का आनन्द उठाती है। वहां मुहल्ले के अन्य छोटे बालक–बालिकाएं भी आते हैं। गिल्लू की सबसे दोस्ती हो गई है। वे सब गिल्लू के 'फ्रेन्ड' हैं। 'फिसल पट्टी' उसका 'फेवरेट' गेम है? गिल्लू किसी और को इसका उपयोग नहीं करने देती।

उपर्युक्त तीन दृश्य कई सवाल खड़े करते हैं। ये चुनिन्दा दृश्य बताते हैं कि 'स्कूल' बच्चों को रास नहीं आ रहे हैं। स्कूल बच्चों के लिए कारागृह बनते जा रहे है। वहां बच्चों की स्वतंत्रता गुलाम बनकर रह जाती है। विद्यालय सहजता को कृत्रिमता में बदल रहे हैं। बालक विद्यालय से मुक्ति चाहते हैं। बालकों की व्यापक संवेदनशीलता को नज़रअंदाज़ करनेवाले विद्यालय बालकों की सृजनशीलता को कुचल रहे हैं। जब गिल्लू अनजान बालक को 'भैया', ऑटो ड्राइवर को 'अंकल' नाम देती है तो गिल्लू अपनी हमउम्र के सभी बालकों की न सिर्फ़ भाषाई संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करती है बल्कि एक विशाल सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना को भी व्यक्त कर रही होती है। पार्क में 'फेवरेट' गेम और उस पर एकाधिकार गिल्लू के अहम को गुब्बारे की तरह फुलाते हैं जो कभी भी 'फुस्स' हो सकता है या फट सकता है।

हमारा सामाजिक ताना–बाना क्यों बच्चों की संवेदनशीलता को हाशिए पर धकेलकर उनमें 'अहम' का भाव विकसित करता है? वयस्क का अहम बालकों पर थोपा जाता है। असफल अभिभावक अपनी महत्त्वाकांक्षा का आरोपण बालकों पर करते हैं और उन्हें उनकी नैसर्गिक क्षमताओं के विरुद्ध 'डॉक्टर', 'इन्जीनियर', 'आईएएस आफ़िसर', बनाने पर तुल जाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि बालक किस 'मिट्टी' का बना है? उसका 'रसायन' क्या है? उसकी संवेदनशीलता क्या है? अभिभावकों की इस 'आग' और 'हवा' का शिकार होती है बालक की कोमल संवेदनशीलता।

यदि हम अंग्रेज़ी माध्यम के इन 'नर्सरी' में पढ़नेवाले बच्चों के अतिरिक्त सरकारी विद्यालय में जाकर देखें तो पता चलता है कि 'शिक्षा का माध्यम' कभी भी संवेदनशलता के मार्ग का रोड़ा नहीं बनता। एक अध्यापक–शिक्षक के रूप में मैंने ऐसे कई 'एनकाउन्टर' देखे हैं जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। बानगी के तौर पर निम्नांकित घटनाओं पर गौ़र करिए–

दृश्य चार : एक शिक्षक महाविद्यालय के प्रशिक्षु शिक्षक 'शिक्षण–अभ्यास' के लिए शहर के किनारे स्थित एक शहरी–गांव में जाते हैं। नवाचार करने को आतुर इस शिक्षक–महाविद्यालय के प्रशिक्षु–शिक्षक कई 'एक्सपेरिमेन्ट' करते हैं। उस दौरान कई संवाद होते हैं। उदाहरण के लिए कुछ संवाद देखिए–

संवाद एक : कक्षा आठ का विज्ञान का पाठ पढ़ाने गए शिक्षक ने पूरी तैयारी की। शिक्षक ने एक 'परखनली' ली। उसमें एक 'पदार्थ' डाला। फिर दूसरा 'पदार्थ' डाला। शिक्षक ने छात्रों से पदार्थ का रंग पूछा। बदले रंग पर एक प्रश्न और किया।

शिक्षक ने परखनली को गरम किया। प्रश्न किए। छात्रों ने 'डायरेक्ट' प्रश्नों के 'डायरेक्ट' उत्तर दिए। पर्यवेक्षण को गए शिक्षक–प्रशिक्षक ने बीच में टोकते हुए बच्चों से पूछा, 'आपने प्रयोग देखा। और प्रश्नों के ठीक उत्तर भी दिए। अच्छा किया। क्या अब आप कुछ प्रश्न अपने टीचर से कर सकते हैं? यह सुन बालक चुप हो गए। एकाध मुस्कराए। कुछ विद्यार्थी चिन्तित हो गए। कुछ घबराए। शिक्षक की हालत भी देखने लायक थी। वह असंमजस में था। एक–दो मिनिट बाद एक 'चंचल' बालक ने हाथ खड़ा किया। उसने प्रश्न दागे :

1. पदार्थ परखनली में ही क्यों डाला? 'कटोरी' में क्यों नहीं? (शिक्षक ने तकनीकी शब्दावली में जवाब दिया)

   थोड़ा साहस जुटाकर एक अन्य बालक ने पूछा परखनली नीचे से ही काली क्यों हुई। (शिक्षक ने कारण बताया)। उसी बालक ने काउन्टर प्रश्न किया, 'परखनली काली ही क्यों हुई? (शिक्षक ने 'कार्बन' शब्द का प्रयोग कर उत्तर दिया।), उस छात्र ने आगे पूछा : कार्बन क्या होता है? यह कहां से आया? यदि 'था' तो दिखाई क्यों नहीं दिया? (अब शिक्षक की हालत देखने लायक थी।)

   पीछे बैठे एक सहमे बालक ने हिम्मत पाकर प्रश्न किया, 'सर! गरम करने पर कांच की परखनली टूटी क्यों नहीं? (शिक्षक के पास शब्द नहीं बचे। वह अपनी 'इज़्ज़त' बचाने के लिए अपने एसएससी के ज्ञान का प्रयोग करने लगा। उसकी बातें विद्यार्थियों के सर के ऊपर से निकल गईं। प्रश्न करनेवाले बालक निराश हो गए। शिक्षक 'घबरा' गया।

   इस दुर्घटना से कई नए प्रश्न पैदा होते हैं?

1. शिक्षक ही प्रश्न क्यों करते हैं?
2. शिक्षक विद्यार्थी को प्रश्न करने की स्वतंत्रता क्यों नहीं देते?
3. शिक्षक की जगह अगर विद्यार्थी प्रश्न करने लगे तो क्या सीखने की प्रक्रिया अर्थपूर्ण नहीं हो पाएगी?
4. शिक्षक अपने 'ज्ञानी' होने के 'अहम' से कुछ मुक्त होंगे?
5. विद्यार्थी को 'बेवकूफ़' माननेवाले शिक्षक यह कब समझेंगे कि विद्यार्थी बहुत ही 'संवेदनशील' है?
6. शिक्षक–प्रशिक्षण' अपनी परंपरागत मानसिकता से कब 'मुक्ति' पाएगा?

बताने की ज़रूरत नहीं कि बालक छुइमुई की तरह होते हैं? उन्हें प्यार से समझना होगा। शिक्षक उन्हें प्यार करें, उन्हें स्नेह दें, अपना समझें। बालकों की संवेदनशीलता को पहचानें, विकसित होने दें। यदि दुनिया में मानवता को बचाना है तो बालकों की संवेदनशीलता की रक्षा करनी होगी। हमें बालकों को भविष्य के 'नागरिक' बनाना है, भूगोल के खंड में विभाजित नागरिक नहीं। 'विश्व के नागरिक' हो दुनिया में 'शांति' के रक्षक होंगे। ये बालक ही दुनिया की संवेदनशीलता की नर्सरी है। इस नर्सरी की रक्षा ही समय की मांग है।

व्यापक अर्थ में संवेदनशीलता वस्तुतः औपनिवेशिक मानसिकता से सच्ची मुक्ति है। जो बालक वस्तुतः 'मालिक–गुलाम'वाली मानसिकता से मुक्त होगा, वही संवेदनशील बालक होगा। ऐसे बालक में 'अहम' नहीं होगा। 'अहम' का बीज वस्तुतः औपनिवेशिक मानसिकता का बीज है।

शिक्षक का स्वयं इस औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त करने के लिए संवेदनशील शिक्षक संस्थाओं की ज़रूरत है जो शिक्षक के सम्मुख वास्तविक 'वास्तविकता' को रख सके। हमें ठूंसे गए कृत्रिम, अर्थहीन, बेकार, व्यर्थ एवं क्षणिक 'ज्ञान' की जगह इंसान बनानेवाली संवेदनशीलता चाहिए। इस 'विश्व' का अस्तित्व सिर्फ़ संवेदनशीलता से ही बचेगा फिर चाहे वह मानवीय हो या पर्यावरणीय।

शिक्षक संस्थानों को एक ऐसा नया पर्यावरण सृजित करना होगा जो स्वाभाविकता, संवेदनशीलता एवं वैश्विक दृष्टिकोण में सहायक हो। कहने में दुःख तो होता है कि शिक्षक–प्रशिक्षण का प्रचलित मॉडल अर्थहीन है। इसे सिद्ध करने के लिए किसी शोध की ज़रूरत नहीं है।

शिक्षक बनने की सच्ची इच्छा रखनेवाले व्यक्ति को विद्यालय की वास्तविकताओं से अवगत होने दें और सोचने दें–

- आज बालक स्कूल क्यों नहीं आना चाहता?
- विद्यालय बालक को रोकने में असमर्थ क्यों है?
- स्कूल जाते वक़्त बालक 'उदास' क्यों होता हैं?
- विद्यालय से छुट्टी होने पर बालक 'अतिरिक्त खुश' क्यों होता है? वह ऊर्जा से लबालब कैसे भर जाता है?
- बालक पढ़ने से ज़्यादा खेलने में क्यों रुचि लेते हैं?
- क्या खेल से सारे विषय नहीं पढ़ाए जा सकते?
- क्या शिक्षक को 'सर' अथवा 'मैडम' कहना सच्चा 'सम्मान' है या औपनिवेशक मानसिकता' का प्रशिक्षण?
- बालक अपने शिक्षक को 'मित्र' क्यों नहीं मानते?
- विद्यालय में अनुशासन के नाम पर जो किया जाता है वह 'आतंकवाद' से किस तरह भिन्न है?
- क्या 'शिक्षण' के तरीक़े भी निश्चित किए जा सकते हैं?
- क्या 'शिक्षण के तरीक़ों का 'सीखने के तरीक़ों' से कोई संबंध है?
- क्या ज़रूरी है कि हर पढ़ाए गए 'पाठ' का 'परीक्षण' किया जाए?
- क्या विद्यार्थी स्वयं ज्ञान का निर्माण नहीं कर सकता।
- क्या 'शिक्षण' का भी 'अधिगम' हो सकता है?

ऐसे असंख्य सवाल एक ताज़गीयुक्त चिन्तन पैदा करते हैं।

(अ) **समस्या की समझ'** : यह प्रथम चरण है जो इस चिन्तन का स्रोत बन सकता है। यह वह चरण है जो किसी पूर्व चिन्तन से अनुकूलित, प्रभावित एवं पीड़ित नहीं है। शिक्षक बनने की चाह रखनेवाला 'अधिगमकर्ता' बनकर 'ग्रहण' करता है। यह शिक्षक 'देनेवाला' बनकर अहम नहीं पालता है। उसमें यह 'क्षमता' तो है कि वह देख सके, समझ सके और अपनी 'समझ' को एक दिशा दे सके। यह वह चरण है जब शिक्षक संवेदनशील होकर 'जानने' की कोशिश करता है।

(ब) **'समस्या समाधान के स्वयं के प्रयास'** दूसरा चरण है जिसमें शिक्षक अपनी समझ, अपने अनुभव एवं अपनी आकांक्षा के अनुरूप कक्षा की तत्कालीन 'समस्या' का समाधान करने की कोशिश करता है जो कि ज़रूरी नहीं कि एक ही बार में सफल साबित हो। असफल कोशिशों की शृंखला से गुज़रकर शिक्षक सीखता है कि क्या सही है और क्या ग़लत है। यह 'सीख' एक खोज है। एक 'खोज' को उसे याद नहीं रखना पड़ेगा। यह उसके शिक्षक–कर्म का परिणाम है। इस पर वह ख़ुश होगा, गर्व करेगा, अपनत्व–महसूस करेगा। जिस कार्य में मन और मस्तिष्क एकाकार हो जाते हैं वे अक्सर सफल ही होते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक निरन्तर सीखता है और निरन्तर सीखते रहना एक 'सजीव', सक्रिय' एवं 'खोजी' शिक्षक की निशानी है।

(स) **अनुभव आधारित सिद्धान्त** : निर्माण वह अंतिम चरण है जिसमें अपने दोहराए गए सफल एवं असफल प्रयोगों का 'सार' निचोड़ता है। विभिन्न समय स्थान एवं परिस्थितियों में किए किए 'प्रयोगों' के अनुभव संचय करके शिक्षक अपने साथियों तक स्वनिर्मित सिद्धान्तों का सम्प्रेषण करता है। उन पर उदेश्यनिष्ठ चर्चा उसके 'सत्य के प्रयोग' को एक निश्चित दिशा एवं आयाम देते हैं।

उपर्युक्त तीन चरणों से कौन गुज़रना चाहेगा?

यह बात लिखते समय मुझे लगता है कि इनसे वह शिक्षक तो नहीं गुज़रेगा जो यह मानता है कि वह सब जानता है। वह शिक्षक भी इसे अस्वीकार करेगा जो यह जानता है कि 'पूर्वजों' ने जाना है उसके अतिरिक्त कुछ भी 'नया' नहीं जाना जा सकता। वह शिक्षक भी इससे परहेज रखेगा जो यह मान चुका है कि 'जो चल रहा है। वही ठीक है' और 'कुछ भी हो। मुझे क्या फ़र्क़ पड़ता है?'

सच! इस मानसिकता के चौखट में बंद निष्क्रिय मस्तिष्क नवाचार के पक्षधर नहीं हैं, उससे ऐसी अपेक्षा करना उनके साथ ज़्यादती ही होगी।

तो फिर 'हवन' करते अपने हाथ कौन जलाएगा? मुझे लगता है कि जिसे व्यापक अराजकता कचोटती है और जिसे लगता है कि वह क्रान्तिकारी परिवर्तन का अभिकरण एवं उपकरण बन सकता है, वही 'सिरफिरा' इन तीनों चरणों से गुज़रने की 'कोशिश' करेगा। यदि उसमें 'शिक्षा' के प्रति संवेदनशीलता है तो वह हर 'ख़तरे' का सामना करेगा। चाहे उसे भटके अभिभावकों, जिद्दी स्कूलों और 'गोबर–गणेश', शिक्षा–प्रबन्धकों से ही भिड़ना क्यों न पड़े। चिलचिलाती धूप में झुलसते फूल से कोमल बच्चे, भेड़ बकरियों की तरह 'ऑटो' में ठूंस दिए गए बच्चे, शिक्षिका के व्यक्तिगत अवसाद एवं कुण्ठा से पनपे क्रोध के शिकार हुए बच्चे, पढ़े–लिखे 'अशिक्षित' अभिभावकों की उच्च महत्त्वाकांक्षा की आग से पिघले बच्चों के दृश्य हमारी आंख के किसी कोने में आंसू पैदा नहीं करते और हमारा दिल इन दुर्घटनाओं' पर रोता नहीं है तो हमें समझ लेना चाहिए कि 'मानवता' के दिन ज़्यादा शेष नहीं है।

नापसंद

★ के. आर. शर्मा

अपनी संस्था के किसी कार्य से यात्रा कर रहा था। सफर लंबा था इस कारण से बोगी में काफ़ी सारे लोग और बच्चे आपस में गपशप कर रहे थे। रेल के सफ़र की एक ख़ूबी यह होती है कि कई सारे अनजान लोगों से बातें हो पाती है। कई सारे विचारों को जानने का अवसर मिल जाता है। बच्चे भी अपने खेल ढूंढ़ लेते हैं। इस सफ़र में भी ऐसा ही कुछ हुआ।

अचानक एक महिला को कुछ सूझा और बोली कि एक खेल खेलते हैं। उसने कहा कि हरेक यह बताएगा कि "उसको कौन से दो लोग अच्छे नहीं लगते?" जी हां, और यह भी बताना है कि वे क्यों अच्छे नहीं लगते? दरअसल वे कोई आठ–नौ लोग एक साथ थे जिसमें छोटे–बड़े चार बच्चे भी थे। खेल बड़ा ही जोख़िम भरा था। सबने बारी–बारी से बताया कि किसको कौन अच्छा नहीं लगता। खेल की शुरुआत बड़े लोगों से हुई। लगभग दस साल की बच्ची की बारी आई तो खेल ने कुछ और ही रुख़ अख़्तियार कर लिया।

इसके पहले जिन भी स्त्री–पुरुषों ने नापसंदगी में जो कुछ कहा वह काफ़ी दिलचस्प था। उसमें कुछ चालाकी थी। नापसंदगी के ऐसे कुछ नाम बताए गए जो वहां मौजूद नहीं थे। इसलिए बड़ा ही हंसी का माहौल बना हुआ था। वयस्क लोग नापंसदगी के नाम पर निंदा रस का भरपूर आनंद ले रहे थे। अरे, उस वर्मा की बात ही मत करो। वो तो पड़ोसी धर्म निभाना होता है। वरना उससे बात कौन करे। एक महिला ने कहा कि मिसेस सिंह को वह इसलिए पसंद नहीं करती क्योंकि वह बड़ी ज़ोर–ज़ोर से हंसती है। कुल मिलाकर रंग–रूप, चाल–ढाल आदि नापंसदी के लक्षणों में शामिल थे।

एक बच्ची काफ़ी उतावली हुए जा रही थी नापसंदगी बताने को। वाकई में बच्चे का मन कितना कोमल और पारदर्शी होता है यह इस घटना से उजागर होता है। उस बच्ची की नापसंद की सूची में पहला नाम था उसकी मम्मी का। बच्ची ने जैसे ही उसकी मम्मी का नाम लिया वहां के माहौल में कुछ उदासी और मायूसी छा चुकी थी। सब के सब हक्के–बक्के रह गए और बगलें झांकने लग गए। बच्ची यह बताना चाह रही थी कि क्यों उसे मम्मी पसंद नहीं है। मगर माहौल ने अनुमति नहीं दी उस बच्ची को यह बताने को। और दूसरा नाम तो वह बता ही नहीं सकी।

बच्ची की मम्मी कसमसाकर रह गई। जिसने खेल की शुरुआत की वही कटघरे में खड़ी हो जाएगी, यह सोचा भी नहीं था। अब उस बच्ची की हालत ख़राब थी जिसने मम्मी को नापसंद घोषित किया था। बच्ची के चेहरे पर तनाव साफ़ तौर पर देख पा रहा था।

मम्मी की ओर से अब सफ़ाई दी जा रही थी। "अरे, मैं तो इसकी तरफ़ इतना ध्यान देती हूं फिर भी इसे देखो। बच्चे कैसे हिम्मत कर लेते हैं मां–बाप के

★ विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र उदयपुर में कार्यरत।

ख़िलाफ़ बोलने की।" बच्ची रूंआसी हो चली थी। मामले को चर्चा के स्तर पर रफ़ा–दफ़ा किया जा चुका था। मगर उन लोगों पर और खासकर उस बच्ची के चेहरे पर स्पष्ट असर दिखाई दे रहा था।

मामला यह नहीं कि बच्ची ने मां को नापसंद कर दिया बल्कि यह कि वह बच्ची इतना साहस रखती है अपनी बात कहने का। स्पष्ट है कि हम वयस्क लोग चाहे अभिभावक हों या शिक्षक; बच्चों की ज़िंदगी में हस्तक्षेप करते रहते हैं। और यह हस्तक्षेप कहीं इतना ज़्यादा होता है कि बच्चों की भावनाएं कुचलने का अहसास ही नहीं होता। जॉन होल्ट ने ठीक ही कहा है कि बच्चे को हम एक ग़ुलाम या पालतू जीव के रूप में देखने के आदी हो चुके होते हैं। वह हर बात वैसी ही करे जैसी माता–पिता चाहते हैं। उनका हंसना, बोलना, पढ़ना और हरेक काम उनकी मर्ज़ी के मुताबिक़ ही करें। होल्ट कहते हैं कि बच्चों को भी वे सब अधिकार मिलने चाहिए जो कि वयस्कों को प्राप्त हैं। दरअसल अभिभावक अपनी संतान को नियंत्रण की ज़ंजीरों पर इस उम्मीद से बांधकर रखते हैं कि कहीं उनको आज़ादी देने से या हक़ देने से वे बिगड़ न जाएं। दरअसल हम जिस संस्कृति का इतना गुणगान करते हैं यदि उसमें किसी को अपनी सहमति या असहमति जताने की आज़ादी न हो तो यह सब प्रपंच ही कहा जाएगा।

सवाल यह कि उस बच्ची ने ऐसा क्या ग़लत कह डाला जिस वजह से उसको मानसिक यंत्रणा का शिकार होना पड़ा? मैं नहीं जानता कि उस बच्ची के साथ बाद में क्या बर्ताव होगा। हां, मैं इतना ज़रूर जानता हूं कि कई मां–बाप अजनबियों या अपने रिश्तेदारों की उपस्थिति में बच्चों के प्रति जहां प्यार जताते हैं वहीं उनकी अनुपस्थिति में जमकर पिटाई भी करते हैं। घरों में ऐसा काफ़ी बच्चों के साथ होता है। कहने की ज़रूरत नहीं कि पढ़े–लिखे माता–पिता इस मामले में कम नहीं है।

गिजुभाई कहते हैं कि दरअसल घर बड़ों का होता है जिसमें बच्चे उसमें समाए होते हैं। बड़ों की बड़ी–बड़ी रुचियों में बच्चों को जीना पड़ता है। बड़ों के बोलते समय चुप रहना होता है। मेहमानों के सामने बच्चों को अदब के साथ खड़े होना पड़ता है। और उनको सुनाने के लिए उनकी पसंद की कविताएं रटनी पड़ती हैं। गिजुभाई आगे कहते हैं कि बचपन में क़दम–क़दम पर यह महसूस होता है कि बच्चे अपने माता–पिता के घर के खिलौने हैं। माता–पिता ख़ुश होने के लिए अपनी पसंद के कपड़े बच्चों को पहनाते हैं। अपनी मौज–मस्ती के लिए ही वे अपनी इच्छानुसार बच्चों को खिलाते हैं, घुमाते हैं...। मेहमानों के आने पर वे बच्चों को सम्मान देते हैं। यही वजह है कि गिजुभाई ने बच्चों की पैरवी करते हुए कहा कि आखिर मैं करूं तो क्या करूं? मैं खेलूं कहां? मैं कूदूं कहां? मैं गाऊं कहां? मैं किसके साथ बात करूं? बोलता हूं तो मां को बुरा लगता है। खेलता हूं तो पिताजी खीजते हैं। कूदता हूं तो बैठ जाने को कहते हैं। गाता हूं तो चुप रहने को कहते हैं। अब, आप ही कहिए कि मैं कहां जाऊं? क्या करूं?

निष्पक्ष रूप से देखें तो उस बच्ची की इस क्षमता का सम्मान करना चाहिए कि वह अपने विचारों को बेबाक रूप से प्रकट करने का साहस रखती है। बच्चे की अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास करना चाहिए न कि उनको कुंद कर दिया जाए। यह क्षमता हर बच्चे में स्वाभाविक तौर पर होती है मगर हमारी सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षिक व्यवस्थाएं विचारों को प्रकट करने की क्षमता को पोषित करने के बजाए नेस्तनाबूत करने में कोई कसर नहीं छोड़ती।

एजुकेशन कम्यूनिटी

यूएन सोल्यूशन एक्सचेन्ज (UN Solution exchange) भारत में संयुक्त राष्ट्र अभिकरण की विभिन्न एजेंसियों का एक संयुक्त प्रयास है। इसका मक़सद विकास के क्षेत्र में काम कर रही विभिन्न संस्थाओं एवं व्यक्तियों के बीच संवाद को बढ़ाना, किसी मुद्दे को सुलझाने के लिए समाधान बांटना और एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है। इसी प्रयास के तहत एजुकेशन कम्युनिटी काम कर रही है। इसका लक्ष्य शिक्षा के क्षेत्र में समता व गुणवत्ता को बढ़ावा देना है। इस मंच के माध्यम से शैक्षिक कार्यकर्ता, नीति निर्माता, शोधकर्ता एवं शैक्षिक प्रशासक अपनी जानकारियाँ और अनुभव बांटते हैं ताकि राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों (NDG) व मिलेनियम विकास के लक्ष्यों (MDG) की गुणवत्ता के साथ निर्धारित समय में पूरा किया जा सके। यह एक सदस्यता आधारित मंच है जो मुख्यतः तकनीक के उपयोग के साथ–साथ दूसरे कई तरीक़ों जैसे वार्षिक फोरम, रीजनल फोरम, एक्शन ग्रुप के माध्यम से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे लोगों को एक दूसरे से जोड़ता है।

अध्यापक शिक्षा कार्यक्रमों और पाठशाला सुधार के लिए अध्यापक की कल्पना

इस मंच पर ''अध्यापकों की कल्पना'' पर एक रोचक चर्चा शुरू की जा रही हैं। अध्यापकों को अब शिक्षा की पूरी प्रक्रिया में सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में से एक के रूप में देखा जाने लगा है। हममें से बहुतों के विचार में, शिक्षा की गुणवत्ता, बहुत हद तक शिक्षा व्यवस्था द्वारा तैयार किए गए अध्यापकों की गुणवत्ता पर निर्भर है। दूसरे कितने भी सुधार कर लिए जाएं, अगर अध्यापक पर्याप्त रूप से कुशल, योग्यतासम्पन्न और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दे पाने के लिए आवश्यक क्षमताओं से लैस नहीं है तो एक सामर्थ्यसम्पन्न भावी पीढ़ी तैयार करने के बारे में चल रही चर्चा भी काफ़ी हद तक सपना ही बनकर रह जाएगी। अध्यापकों के प्रशिक्षण और उन्हें तैयार करने पर चर्चा भी काफ़ी हद तक 'हम अपने बच्चों को कैसे अध्यापकों द्वारा पढ़ाए जाने देखना चाहेंगे', पर केंद्रित है। इसलिए किसी और मुद्दे पर बात करने से पहले अध्यापक की कल्पना के बारे में बात करना ही अधिक तार्किक होगा।

प्रख्यात शिक्षाशास्त्री विचारक, दार्शनिक और एजुकेशन कम्यूनिटी के संसाधन समूह के सदस्य **रोहित धनकर** ने ' अतिथि मॉडरेटर' के रूप में इस चर्चा को मॉडरेट करना स्वीकार किया है। हम रोहितजी द्वारा उठाए गए प्रश्नों के प्रकाश में 'अध्यापक की कल्पना' पर सदस्यों से उत्साह के साथ अपने विचार व्यक्त करने का अनुरोध करते हैं।

प्रिय मित्रो,

मैं सुविधाओं से वंचित बच्चों की शिक्षा और शिक्षा की गुणवत्ता के लिए काम कर रहे एक संगठन से जुड़ा हूं। हमारे काम में आवश्यक ज्ञान आधार, समझदारी, सामाजिक सरोकार और शिक्षा में गुणवत्ता के मुद्दे पर काम कर पाने की सामर्थ्य से सम्पन्न अध्यापकों को विकास शामिल है। हमारा संगठन पिछले 30 बरस से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहा है। इसके साथ ही उसने देश के विभिन्न राज्यों में वहां की सरकारों, अध्यापक प्रशिक्षण संस्थानों और गैर–सरकारी संगठनों के सहयोग से अध्यापकों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी भी ली है। हमने टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल सांइस द्वारा संचालित एमए (एलिमेंटरी) एजुकेशन कार्यक्रम के विकास में योगदान दिया है और मैं अतिथि अध्यापक के तौर पर इस कार्यक्रम में शिक्षा के दर्शन पर एक कोर्स भी पढ़ाता हूं।

लगता है कि शिक्षा गुणवत्ता अंततः हमारे शैक्षिक विमर्श का केंद्रीय सरोकार बन ही गई। गुणवत्ता पर सर्वशिक्षा अभियान में दिए गए ज़ोर, एनसीएफ 2005 में व्यक्त सरोकारों, सेमीनारों और यहां तक कि राष्ट्रीय प्रेस में चल रहा विमर्श इसका प्रमाण है। लेकिन यहां यह याद रखना उपयोगी होगा कि यह स्थिति आने से पहले हमारे शैक्षणिक प्रयास हाल ही तक मात्रा और गुणवत्ता की द्विभाजकता के बीच झूलते रहे हैं।

बहुत ही धीरे–धीरे, लेकिन निश्चित रूप से, हमें यह बात भी समझ में आने लगी है कि शिक्षा में गुणवत्ता सुधारने में अध्यापक 'सबसे महत्त्वपूर्ण घटक' हैं। इसलिए, यही वह समय है जब हमें पूछना चाहिएः हमारी शिक्षा प्रणाली को उसकी लीक से हटाकर उसे गुणात्मक सुधार की राह पर ले जाने में सक्षम किस प्रकार के अध्यापक का विचार हमारे मन में है? हम उसमें किन क्षमताओं और चारित्रिक गुणों की कल्पना करते हैं? हम उसे व्यवस्था, बच्चों और समाज के साथ कैसा संबंध विकसित करते और बनाए रखते देखना चाहते हैं?

अध्यापक को अक्सर भावविभोर होकर याद और महिमामंडित की जाने वाली छवि उस लगभग 'सर्वज्ञ गुरु' की है जिसका ध्येय सदा अपने शिक्षा का कल्याण होता था (और वह हमेशा पुरुष ही होता था)। अपने क्षेत्र का ज्ञाता और विद्या के कोष का यह समर्पित संरक्षक विद्या प्रदान करने में भारी कृपणता बरतता था, कड़ी कसौटी पर कसकर 'सुपात्र शिष्यों' को चुनते हुए उसे शिक्षा के सार्वभौमीकरण के विचार की भनक तक नहीं थी। लेकिन यह छवि शायद मिथक ही है और ऐतिहासिकता की कसौटी पर खरी तक न उतरे। औपनिवेशिक युग में अध्यापक नियमों, पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों, परीक्षाओं और ऊपर से आए आदेशों से पूरी तरह बंधा, व्यवस्था का एक नौकर भर रहा गया। अपनी स्वायत्तता खोकर वरीयताक्रम के सबसे निचले पायदान पर खड़ा सरकारी नौकर ही रह गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब हमारी शिक्षा व्यवस्था अभी कम योग्यताप्राप्त और कम तैयारीवाले अप्रशिक्षित अध्यापकों की समस्या से जूझ ही रही थी, एनसीएफ और विभिन्न प्रकार के सहायक अध्यापकों (पैरा टीचर्स) ने अध्यापक की योग्यता और तैयारी को और नीचे धकेल दिया। केवल स्थानीयवासी होने के आधार पर बमुश्किल पढ़–लिख पानेवाले किसी भी व्यक्ति को सिर्फ़ कुछ दिन के प्रशिक्षण के बाद अध्यापन के योग्य घोषित कर के उसे निरन्तर समर्थन का आश्वासन दिया जा सकता था। इस प्रकार अध्यापन के लिए किसी तरह के ज्ञान आधार की आवश्यकता का विचार पूरी तरह नकारा गया।

यहां अध्यापक को एक ऐसे व्यक्ति की तरह देखा जा रहा था जो एक बेहद संक्षिप्त प्रशिक्षण और ख़राब ढंग से लिखी मैनुअल के माध्यम से प्राप्त निर्देशों का पालन भर कर ले। शैक्षिक विचार, विषय का ज्ञान और यहां तक कि शिक्षण विधियों के लिए आवश्यक कौशल तक ज़रूरी नहीं माने जा रहे थे।

आज भी, सरकारी तंत्र में भले ही योग्यता और प्रशिक्षण संबंधी मानदण्डों का अनौपचारिक (भावना के स्तर पर नहीं) पालन किया जाता है और वेतनमान सुधारे गए हैं, अध्यापक को आदेशों और प्रशिक्षण के उस मूढ़ प्राप्तकर्ता के रूप में देखा जाता है जो कोई भी प्रश्न पूछे बिना आदेशों का पालन करता है, बस जो कहा जाए वह कर देता है।

इसलिए, प्रश्न उठता है कि – अध्यापक शिक्षा और शालाओं में सुधार की योजना बनाते हुए हमारे मन में अध्यापक की क्या अवधारणा है?

- क्या वह नियम से बंधा, कड़ाई से अनुवीक्षित, अन्तरतम तक आज्ञाकारी ऐसा व्यक्ति है जिसे कोई स्वतंत्रता नहीं है और जो केवल सौंपे गए काम कर देने में समर्थ है?
- क्या वह ऐसा व्यक्ति है जिसे पाठशाला या शिक्षा के नियोजन के मामले में कोई स्वतंत्रता नहीं है लेकिन उसके पास जो करने को कहा जाए उसे क्रियान्वित कर पाने लायक पर्याप्त ज्ञान और कौशल आधार है?
- क्या यह शैक्षणिक विचार, विषयवस्तु और अर्थपूर्ण शिक्षा को स्वतंत्र रूप से निभाने के व्यावहारिक कौशलों के स्तर पर पर्याप्त रूप से तैयार, शिक्षा की दृष्टा है?
- क्या वह एक (शेफ़लर के मुहावरे का इस्तेमाल करते हुए) ''छोटा–मोटा मिस्त्री'' है जो जैसा उसे कहा जाए वैसा पढ़ा सकेगा या वह बच्चों को जानने, करने और अनुभूति के मानवीय तरीक़ों में प्रविष्ट करवाने के लिए उन के साथ एक तार्किक विमर्श शुरू करने में समर्थ कोई व्यक्ति है? दूसरे शब्दों में कहें तो वह किसी दूसरे के अभिकल्पित शैक्षणिक भवन में ईंटें चिननेवाला कारीगर है या इस भवन की रचना में सहयोगी वास्तुकार है?

यदि शिक्षा हमारी वास्तविक चिन्ता है और गुणवत्ता के संदर्भ में अध्यापक केन्द्रीय तत्त्व है तो हम इन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर किए बिना आगे नहीं बढ़ पाएंगे।

उपर्युक्त बिन्दुओं के संदर्भ में मैं सदस्यों से अपने विचार व्यक्त करने का आग्रह करता हूं। आपके विचार अध्यापकों की भूमिका को बेहतर समझ पाने में सहायक होने के साथ ही अध्यापक शिक्षा के कार्यक्रमों के इनपुट के तौर पर काम देंगे।

इस मंच की सदस्यता आप भी ले सकते हैं। इसके लिए WWW. unsolutionexchange-un.net.in पर सदस्यता फार्म प्राप्त कर सकते हैं या निम्न पते पर संपर्क करें–

शुभांगी शर्मा
यूनेस्को
यूनेस्को हाउस, बी–5/29, सफदर जंग एन्कलेव, नई दिल्ली– 110029

कार्टून में गांधी

गांधी एक विचार है।
गांधी के विचारों और उसके व्यक्तित्व को दर्शाने के लिए उनके कई कार्टून बनाए हैं।
ऐसे कुछ कार्टून हमने इंटरनेट पर खोजे हैं।

कैसा हो स्कूल हमारा!

गिरीश तिवारी 'गिरदा'

कैसा हो स्कूल हमारा
जहां न बस्ता कंधा तोड़े, ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न पटरी माथा फोड़े, ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न अक्षर कान उखाड़े, ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न भाषा जख़्म उघाड़े, ऐसा हो स्कूल हमारा

कैसा हो स्कूल हमारा
जहां किताबें निर्भय बोलें ऐसा हो स्कूल हमारा
मन के पन्ने–पन्ने खोलें ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न कोई बात छुपाये ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न कोई दर्द दुखाए ऐसा हो स्कूल हमारा

जहां फूल स्वाभाविक महके – ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां बालपन जीभर चहके – ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न अक्षर कान उखाड़े – ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न भाषा जख़्म उघाड़े – ऐसा हो स्कूल हमारा

कैसा हो स्कूल हमारा
जहां अंक सच–सच बतलायें ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां प्रश्न हल तक पहुंचाए ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न हो झूठ का दिखव्वा ऐसा हो स्कूल हमारा
जहां न सूट–बूट का हव्वा ऐसा हो स्कूल हमारा

कैसा हो स्कूल हमारा
जहां न मन में मन–मुटाव हो
जहां न चेहरों में तनाव हो
जहां न आंखों में दुराव हो
जहां न कोई भेद–भाव हो

उत्तराखंड के जनकवि हैं। नैनिताल में रहते हैं।